श्रीचैतन्य महाप्रभु

के

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गो जयतः

श्रीचैतन्य महाप्रभु

के

स्वयं–भगवत्ता–प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय–प्रमाण

श्रीकृष्णचैतन्यदशमाधस्तनान्वयवर श्रीगौड़ीयाचार्य–केशरी
ॐविष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी
महाराजके अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज
द्वारा संगृहीत एवं संकलित

काव्य वेदान्ततीर्थ महाकवि श्रीवनमालीदास शास्त्री
द्वारा अनुवादित

श्रीगौड़ीय–वेदान्त–समितिके वर्त्तमान सभापति–आचार्य
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज
द्वारा सम्पादित

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

प्रकाशक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वन महाराज
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ. प्र.)

तृतीय संस्करण—श्रील रघुनाथदास गोस्वामीजीका दण्ड महोत्सव
१२ जून २००३

प्राप्ति स्थान—

१. श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, तेघरीपाड़ा, पो० नवद्वीप, ✆ ०३४३२—२४००६८
२. श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा, हुगली (प॰ बं॰) ✆ ०३३—२८०७४५६
३. श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरा (उ॰ प्र॰) ✆ २५०२३३४
४. श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, दानगली, वृन्दावन (उ॰ प्र॰) ✆ २४४३२७०
५. श्रीगोपीनाथजी गौड़ीय मठ, राणापत घाट, वृन्दावन (उ॰ प्र॰) ✆ २४४४९६१
६. श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रम, ईशापुर, मथुरा (उ॰ प्र॰) ✆ २४५०५१०
७. श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ, बी-३ए, जनकपुरी, नई दिल्ली ✆२५५३३५६८
८. श्रीनीलाचल गौड़ीय मठ, स्वर्गद्वार, पुरी (उड़ीसा) ✆ ०६७५२—२२३०७४
९. श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठ, २८, हालदार बागान लेन, कलकत्ता ✆ २५५५८१७३
१०. श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ, गोलोकगंज, ग्वालपाड़ा, धूबड़ी (आसाम)
११. श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचार केन्द्र, कोरन्ट, रान्दियाहाट, जिला-बालेश्वर (उड़ीसा)
१२. श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ, शक्तिगढ़, शिलिगुड़ी,(प॰ बं॰)✆ ०३५३—२४६२८३७
१३. श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ, आशुतियाबाड़, मेदिनीपुर (प॰ बं॰)
१४. श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठ, सिधाबाड़ी, रूपनारायणपुर, जिला-वर्द्धमान (प० बं०)
१५. श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, पो० वासुगाँव, जिला—कोकड़ाझार (आसाम)
१६. श्रीमेघालय गौड़ीयमठ, तुरा, वेस्ट गारो हिल्स (मेघालय) ✆ ०३६५१—२३२६९१
१७. श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीयमठ, मिलनपल्ली, शिलिगुड़ी, दार्जिलिङ्ग ✆ ०३५३—२४६१५९६

मुद्रक—
रेक्मो प्रिन्टर्स, नई दिल्ली

सम्पादकीय वक्तव्य

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्ग और श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीकी कृपासे **'श्रीचैतन्य महाप्रभुके स्वयं–भगवत्ता–प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय–प्रमाण'** ग्रन्थका यह चतुर्थ संस्करण पाठकोंके दृष्टिगोचर हो रहा है। अल्प समयमें ही तृतीय संस्करणका समाप्त होना इस ग्रन्थकी महिमाका प्रदर्शन करता है।

कम्पूटर द्वारा पूरे ग्रन्थकी अक्षर–योजना की गई है। अक्षरयोजना, मुद्रण, भ्रमसंशोधन आदि सेवा कार्योंके लिए श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज, श्रीमान् पुरन्दर दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् कृष्णकृपादास ब्रह्मचारी, श्रीमान् सुबलसखा दास ब्रह्मचारी आदिकी सेवा–प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय है। श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग–गान्धर्वागिरिधारी इनपर प्रचुर कृपाशीर्वाद वर्षण करें, यही उनके चरणोंमें प्रार्थना है।

श्रीलबलदेव विद्याभूषण
प्रभुजीका तिरोभाव
९ जून २००३

श्रीहरि–गुरु–वैष्णव–कृपालेश प्रार्थी
दीन–हीन त्रिदण्डिभिक्षु
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

निवेदन

मदीय परमाराध्यतम ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अहैतुकी कृपा और प्रेरणासे आज "श्रीचैतन्य-महाप्रभुकी स्वयं-भगवत्ता-प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय-प्रमाण" नामक संग्रह-ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। भगवदवतार या भगवत्-तत्त्वके विषयमें दो प्रकारके प्रमाण ही ग्राह्य हैं। पहला, प्रामाणिक-शास्त्रोंके वचन और दूसरा, महदनुभव अर्थात् श्रुति-शास्त्र-सिद्धान्तमें सुनिपुण एवं परब्रह्ममें साक्षात् अनुभूति-सम्पन्न महाभागवतोंके अनुभव। इस ग्रन्थमें इन दोनों प्रकारके प्रमाण संक्षेपमें संगृहीत हैं।

'रसो वै सः'—इस श्रुति-मंत्रके अनुसार परब्रह्म रसस्वरूप हैं। रसिकशेखर परब्रह्म दो रूपोंमें रसका आस्वादन करते हैं—रस अर्थात् प्रेमके विषयरूपमें और प्रेमके आश्रयरूपमें। वास्तवमें इन दोनों रूपोंमें रसास्वादन ही रस-आस्वादनकी एवं रसिकशेखरत्वकी चरम सीमा है। प्रेमके विषय होकर रसास्वादन करते समय वे ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण हैं तथा प्रेमका आश्रय होकर रसास्वादन करते समय वे ही शचीनन्दन गौरहरि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु हैं। रसिक-शेखर कृष्ण ही आश्रय जातीय रसका आस्वादन करनेके लिये मूल आश्रय-विग्रह-महाभाव-स्वरूपा श्रीमती राधिकाके भाव और कान्तिको अङ्गीकार कर श्रीगौरसुन्दर या श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके

रूपमें प्रकटित हैं।

'छन्नः कलौ' (श्रीमद्भागवत ७।९।३८) के अनुसार कलियुगमें भगवानका छन्न-अवतार होता है। 'छन्न'-शब्द छद्-धातुसे आच्छादनके अर्थमें निष्पन्न होता है। अर्थात् आश्रय जातीय रसास्वादन हेतु स्वयं-भगवान श्रीकृष्ण ही श्रीमती राधिकाके पीतवर्ण द्वारा आच्छादित छन्नावतारी स्वयं-भगवान श्रीगौराङ्ग-महाप्रभुके रूपमें कलियुगके प्रधान उपास्य है।

'कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं' (श्रीमद्भा. ११।५।३२) श्लोकमें कृष्णका कीर्तन करनेवाले (कृष्णवर्णं) पीतवर्णकी अंगकान्ति (त्विषाऽकृष्णं) धारण करनेवाले तथा हरिनाम संकीर्त्तन यज्ञ द्वारा आराधित होनेवाले श्रीगौराङ्ग-महाप्रभुजीको ही कलियुगका प्रधान उपास्य निर्धारित किया गया है। मूल ग्रन्थमें उक्त श्लोकोंकी विशद विवेचना प्रस्तुत की गयी है।

स्वयं भगवानका एक प्रधान लक्षण यह है कि उनके स्वरूपमें अन्यान्य भगवत् स्वरूप-समूह अवस्थित होते हैं। श्रीकृष्ण और श्रीचैतन्य-महाप्रभुजीके अतिरिक्त किसी भी दूसरे भगवत् स्वरूपमें यहाँ तक कि वैकुण्ठाधिपति नारायण और द्वारिकाधीश वासुदेव स्वरूपमें भी यह लक्षण नहीं मिलता। श्रीकृष्णकी भाँति श्रीचैतन्य-महाप्रभुमें विभिन्न समयोंमें भगवत् स्वरूपोंके दर्शन विभिन्न भक्तोंने किये हैं। प्रेम-दान करना स्वयं भगवत्ताका एक दूसरा प्रधान लक्षण है। स्वयं भगवान श्रीकृष्णके अतिरिक्त

अन्य किसी भी भगवत्स्वरूप द्वारा प्रेमदान नहीं किया जाता। लघुभागवतामृत नामक सिद्धान्त-ग्रन्थमें इसका उल्लेख है—

'कृष्णादन्यः को वा लतास्वपि प्रेमदो भवतिः'

(ल॰ भा॰ पू॰ ५।३७)

इस पारिभाषिक सिद्धान्तके अनुसार भी श्रीचैतन्य-महाप्रभु स्वयं-कृष्ण ही हैं, क्योंकि इन्होंने भी भक्तोंकी तो बात ही क्या, जगाई और माधाई जैसे महापापियों तथा श्रीवृन्दावन जाते समय मार्गमें बहुतसे जंगली पशु-पक्षियों तकको भी ब्रह्मादिके दुर्लभ प्रेम प्रदान किया है। इसीलिये भगवत्पार्षद सर्वशास्त्रज्ञ श्रीरूपगोस्वामीने कृष्ण-प्रेम प्रदानकारी महावदान्य दाताशिरोमणि श्रीकृष्ण कहकर ही उनकी वन्दना की है—

नमो महावन्दान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषेः नमः॥

अगणित महाभागवतोंने अन्तःसाक्षात्कार और बहिः-साक्षात्कारके द्वारा उनकी स्वयं-भगवत्ता या उनके श्रीनन्दनन्दनत्वकी स्वयं उपलब्धि करके यह स्थिर-सिद्धान्त किया है कि श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु स्वयं-भगवान् श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीस्वरूपदामोदर, श्रीराय-रामानन्द, श्रीरूप-सनातन-जीव-रघुनाथदास आदि छः गोस्वामीगण, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती, श्रीवृन्दावनदास ठाकुर और श्रीकृष्णदास कविराज जैसे महादिग्गज विद्वान,

सर्वशास्त्रज्ञ, परम विरक्त, परम तत्वज्ञ, समदर्शी, परम रसिक एवं सर्वोपरि परब्रह्मकी साक्षात् अनुभूतिसम्पन्न महाभागवतोंके अनुभवों एवं वचनों, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती और श्रीकेशव काश्मीरी जैसे विख्यात दिग्विजयी तथा प्रकाण्ड विद्वानोंके सुनिश्चित सिद्धान्तमें किसी प्रकारके संदेहकी गुंजाइश कभी भी संभव नहीं है।

भ्रम, प्रमाद, करणापाटव और विप्रलिप्सा—इन चार प्रकारके दोषोंसे मुक्त प्रामाणिक शास्त्र ही भगवत्–तत्त्व निरूपणके विषयमें मूल प्रमाण है। श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, संहिता, श्रीमद्भागवतादि पुराण और महाभारत आदि शास्त्रोंमें कलियुगपावनावतारी श्रीचैतन्य महाप्रभुकी स्वयं–भगवत्ताके भूरि–भूरि प्रमाण है। परन्तु वे प्रमाण–समूह इतस्ततः बिखरे पड़े हैं। उन सबको एकत्र कर एक छोटे ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित करनेकी आवश्यकता बहुत दिनोंसे अनुभवकी जा रही थी।

सन् १९५२ ई॰ में मदीय परमाराध्यतम जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत–श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी आसाम प्रदेशमें श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमधर्मका जोरोंसे प्रचार कर रहे थे। हम लोग लगभग २०–२५ संन्यासी–ब्रह्मचारी उनके साथ थे। बाँसबाड़ी ग्रामकी विराट धर्मशालामें श्रीलगुरुदेवने श्रीचैतन्य–महाप्रभुकी स्वयं–भगवत्ता और उनके सदुपदेशके सम्बन्धमें बड़ा ही

प्रभावशाली भाषण प्रदान किया। कुछ विरोधियोंने उक्त सभामें ही उक्त विषय पर शास्त्रीय प्रमाण माँगे और तत्क्षण ही उत्तर-स्वरूप लगभग २०-२५ प्रधान-प्रधान शास्त्रीय प्रमाण सुनाये गये। उससे विरोधियोंकी बोलती बन्द हो गयी थी। मैंने उन प्रमाणोंको उसी समय लिख लिया। उसी समय मेरे हृदयमें इस विषयमें एक संग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित करनेकी अभिलाषा जाग्रत हुई।

इस घटनाके कुछ ही दिनोंके पश्चात् मेरे सतीर्थ परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराजने (श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान सभापति और आचार्य) श्रीचैतन्य महाप्रभुकी स्वयं-भगवत्ताके लगभग ४० शास्त्रीय प्रमाणोंका एक संग्रह बंगला-लिपिमें प्रकाशित करवाया। अभी कुछ दिनों पहले नवम्बर १९७० ई॰ में जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीके शिष्य वृन्दावनवासी श्रीपाद पुरुषोत्तमदासजीने भी इस विषयका पहलेसे कुछ विस्तृत संग्रह, जिसका अनुवाद महाकवि श्रीवनमालीदास शास्त्री, 'काव्य-वेदान्ततीर्थ' ने किया है, मुझे दिया। मैं इन दोनों भक्तजनोंका विशेष आभार मानता हूँ। श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा संगृहीत एवं संकलित "श्रीश्रीनवद्वीप-धाम माहात्म्य, प्रमाण खण्ड" (परमाराध्यतम ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी द्वारा संपादित बंगला-संस्करण) ग्रन्थसे भी अत्याधिक सहायता मिली

है। उक्त सभी संग्रहोंको मिलाकर इस नवीन संग्रहको प्रस्तुत किया गया है।

सर्वप्रथम यह संग्रह–ग्रन्थ **'श्रीभागवत–पत्रिका'** के सोलहवें वर्षकी संख्या ७ से १० तकमें क्रमशः प्रकाशित हो चुका है तथा इसका द्वितीय संस्करण संवत् २०२८में स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित हो चुका है। अब वह संस्करण निःशेष होनेपर पुनः श्रद्धालु भक्तोंके अनुरोध और पूजनीय वैष्णवजनोंके निर्देशके अनुसार तृतीय संस्करणके रूपमें प्रकाशित हो रहा है।

परमाराध्यतम श्रीलगुरुपादपद्म एवं परमपूजनीय वैष्णवोंकी प्रीति–विधानके लिये ही हमारा क्षुद्र प्रयास है। आदरणीय पाठक इस ग्रन्थका पाठकर हमें प्रचुर आशीर्वाद करें—यही प्रार्थना है। अलमतिविस्तरेण।

श्रीविष्णुप्रिया आविर्भाव–तिथि
सम्वत् २०३७

श्रीगुरु–वैष्णव–कृपालेश प्रार्थी
त्रिदण्डिभिक्षु—
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

श्लोक–सूची

बंगला पद्य—सूची

हिन्दी पद्य—सूची

प्रमाण–ग्रन्थ तालिका

अग्निपुराण
अथर्ववेद
अद्वैतविलास
अनन्त संहिता
आदिपुराण
ईशान–संहिता
उपपुराण
ऊर्द्ध्वाम्नायतंत्र
ऊर्द्ध्वाम्नाय–संहिता
कठोपनिषद्
कापिल–तंत्र
कुलार्णव–तंत्र
कूर्मपुराण
कृष्णयामल
क्रमसंदर्भ
गरुड़पुराण
छान्दोग्योपनिषद्
जैमिनि–भारत
तत्व–संदर्भ
तंत्र
देवीपुराण
नारद–पञ्चरात्र
नारदीयपुराण
नारायण–संहिता
नृसिंहपुराण
पद्मपुराण
परतत्वगौर
पुरुषबोधिनी
बृहद्भागवतामृतम्
ब्रह्मपुराण
बृहन्नारदीयपुराण
ब्रह्मयामल
ब्रह्म–रहस्य
भक्तमाल
भविष्य–पुराण
भागवत–संदर्भ
मत्स्यपुराण
महाभारत
मार्कण्डेय पुराण
मीराबाईके पद
मुण्डकोपनिषद्
योग–वाशिष्ठ
रुद्रयामल
वाराहपुराण
वामनपुराण
वायुपुराण
विदग्धमाधव नाटक
विश्वसार–तंत्र
विष्णुपुराण
विष्णुयामल
श्रीचैतन्यचन्द्रामृत
श्रीचैतन्यचन्द्रोदय
श्रीचैतन्यचरितामृत
श्रीचैतन्योपनिषद्
श्रीमद्भगवद्गीता
श्रीमद्भागवत
श्वेताश्वतरोपनिषद्
सख्यसुधाकर
संकल्प–कल्पद्रुम
संमोहन–तंत्र
सामवेद
सामुद्रिक
सारार्थदर्शिनी
सौर–पुराण
स्कन्दपुराण
स्तवमाला
स्वरूपदामोदर–कडचा

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः

श्रीचैतन्य महाप्रभु
के
स्वयं–भगवत्ता प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय प्रमाण

प्रस्तावना

समग्र विश्वको विशुद्ध भगवत्प्रेमरससे आप्लावित करने वाले, श्रीभगवन्नाम–संकीर्तनके प्रवर्तक श्रीचैतन्य–महाप्रभुको कौन नहीं जानता? उन्हींकी अहैतुकी कृपासे आज केवल बंगाल या भारतमें ही नहीं, प्रत्युत् विश्वके कोने–कोनेमें कृष्णनाम–संकीर्तनकी मधुर ध्वनि गूँज रही है। सांसारिक विषय–भोगोंमें प्रमत्त रहनेवाले पाश्चात्य देशोंके अगणित शिक्षित युवक–युवतियाँ भी आज लोक–लज्जाका पूर्णरूपेण परित्याग कर सब प्रकारसे सदाचार ग्रहण कर घर–घरमें, गलियों–गलियोंमें, नगरों–नगरोंमें मृदंग और करताल बजाते हुए भावमें विभोर होकर श्रीकृष्णनामका कीर्तन कर रहे हैं। आजसे लगभग ४९५ वर्ष पूर्व कलियुग–पावनावतारी श्रीचैतन्य–महाप्रभुजीने स्वयं भविष्यवाणी की थी कि शीघ्र ही विश्वभरमें उनके नामका प्रचार होगा—

पृथिवीते आछे जत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम॥

ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही श्रीमती राधिकाके भाव और कान्तिको धारणकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें प्रकटित हैं।

वेद, उपनिषद्, पुराण–उपपुराण, महाभारत एवं महापुरुषों द्वारा रचित ग्रन्थोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी स्वयं–भगवत्ताके प्रमाणोंका भूरि–भूरि उल्लेख है। किसी प्रेमी भक्तके निम्नलिखित पंक्तियोंमें बड़े ही सुन्दर और सरल शब्दोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके अवतरणका कारण परिस्फुट है—

भाव राधिका माधुरी, आस्वादन सुख काज।
जयति कृष्ण–चैतन्य जय, कलि प्रकटे ब्रजराज॥

शास्त्रीय प्रमाणोंके अतिरिक्त, समसामयिक विद्वद् महानुभावों एवं परमसिद्ध महात्माओंने भी श्रीचैतन्य महाप्रभुजीकी स्वयं–भगवत्ताकी प्रत्यक्ष उपलब्धि करके स्वरचित ग्रन्थों और स्वत–स्तुतियोंमें इसका उल्लेख किया है। इनमें सार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीस्वरूपदामोदर, श्रीरायरामानन्द, श्रीरूप–सनातन जीव–रघुनाथ आदि छः गोस्वामीगण, श्रीविठ्ठलेश्वर आचार्य, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती, कवि कर्णपूर, श्रीवृन्दावनदास ठाकुर, श्रीकृष्णदास कविराज आदिके नाम विशेष उल्लेख–योग्य है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुको कुछ लोग भक्त, कुछ लोग प्रेमीभक्त, कुछ लोग महापुरुष और कुछ लोग आवेशावतार या अंशावतार आदि मानते हैं। इन लोगोंकी निजी मान्यताके विरुद्ध हमें कुछ कहना नहीं है। फिर भी जगत् कल्याणके लिए यथार्थ तत्त्वको प्रकाशमें लाना आवश्यक है। अतएव विभिन्न शास्त्रों और विद्वद् महानुभावोंके प्रमाण–वचनोंको यथासंभव संग्रह करनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

संक्षिप्त जीवन–चरित्र

स्वयं–भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुका आविर्भाव पुण्यतोया भगवती भागीरथीके पुनीत तटपर पश्चिम बंगालके नदिया जिलान्तर्गत श्रीधाम नवद्वीप–श्रीमायापुरमें सम्वत् १५४२, सन् १४८६ ई॰ में चन्द्रग्रहण एवं शनिवारसे युक्त फाल्गुनी पूर्णिमाको सायंकालमें हुआ था। ग्रहणके कारण सारा नगर हरिनाम–संकीर्तनकी मधुर ध्वनिसे मुखरित हो रहा था। पिताका नाम पं॰ जगन्नाथ मिश्र और माताका नाम श्रीशची देवी था। नवजात शिशुके मातामह पं॰ नीलाम्बर चक्रवर्ती एक प्रकाण्ड एवं प्रख्यात ज्योतिषी थे। उन्होंने शिशुके जन्मके समय स्थित सिंहलग्न और सिंह–राशि आदिका विचारकर उसे अलौकिक महापुरुषके सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त एवं अखिल विश्वका भरणपोषण करनेवाला बतलाकर उसका नाम विश्वम्भर रखा। माता–पिता एवं पास–पड़ोसके लोग प्यारसे उसे गौरसुन्दर, गौराङ्ग, निमाई, गौरहरि और श्रीशचीनन्दन इत्यादि नामोंसे पुकारते थे। बचपनमें निमाई नाम ही सर्वाधिक प्रसिद्ध था।

बाल्यावस्थामें बालसुलभ चपलतासे और कभी–कभी परम चमत्कारपूर्ण अलौकिक लीलाओंसे, पौगण्डावस्थामें विद्याविलाससे तथा किशोरावस्थामें शास्त्र–विधिसे विवाह करके शास्त्र–सम्मत आदर्श गृहस्थ–धर्मके पालन एवं भक्ति प्रचारसे गौड़भूमिको परमानन्दसे आप्लावित कर

दिया। तदनन्तर श्रीमाधवेन्द्रपुरी (श्रीब्रह्ममाध्व–परम्परा)के शिष्य श्रीईश्वरपुरजीसे गयाक्षेत्रमें दशाक्षर गोपालमंत्रकी दीक्षा ग्रहण कर जीवोंको शास्त्रोक्त लक्ष्णसम्पन्न सद्‌गुरुके श्रीचरणाश्रय ग्रहणरूप कर्तव्यकी शिक्षा दी। गयासे लौटकर भक्त–मण्डलीके साथ श्रीहरिनाम–संकीर्तन द्वारा भक्तिसरिताको प्रवाहित कर गौड़भूमिको प्रेममें निमज्जित कर दिया। २४ वर्षकी अवस्थामें श्रीकेशव भारतीसे संन्यास ग्रहणकर ६ वर्ष तक दक्षिण भारत एवं श्रीवृन्दावन (उत्तर भारत) की यात्राकर लाखों जीवोंको श्रीनाम–प्रेम प्रदान कर कृतार्थ कर दिया। तदुपरान्त १५ वर्षतक श्रीजगन्नाथ पुरीमें अचल वास करके श्रीकृष्ण–प्रेमके प्रवाहसे सम्पूर्ण भारतको आप्लावित किया। इस बीच उन्होंने श्रीस्वरूपदामोदर, श्रीराय रामानन्द, श्रीप्रबोधानन्द, श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीरघुनाथदास, श्रीगोपालभट्ट, श्रीजीव, कविकर्णपूर प्रभृति अपने सिद्ध पार्षदोंके हृदयमें शक्ति संचार कर उनके द्वारा निज विशुद्ध भक्तिरस पोषक अनेकों ग्रन्थरत्नोंकी रचना करवाई। उन्हीं श्रीगौरांगदेवने स्वयं भक्तिके समस्त सिद्धान्तोंसे परिपूर्ण "श्रीशिक्षाष्टक"की रचना करके अधिकारी जीवोंको इसकी शिक्षा दी। कभी–कभी अपने अन्तरंग पार्षद श्रीस्वरूपदामोदर और रायरामानन्दके साथ एकान्तमें इस "श्रीशिक्षाष्टक"के तात्पर्यामृतका रसास्वादन किया करते थे। ये प्रसंग श्रीचैतन्य–चरितामृत आदि ग्रन्थोंमें विद्यमान हैं।

इस प्रकार स्वयं भगवान श्रीगौराङ्गदेवने एक ओर अपनी आदर्श भक्तिमय गृहस्थलीला द्वारा स्वधर्मपरायण गृहस्थोंको जहाँ सद्-गृहस्थाचरणकी शिक्षा दी है, वहाँ दूसरी ओर अपने आदर्श त्यागपूर्ण किन्तु उच्चतम भक्ति-रसमय संन्यासलीलासे सम्पूर्ण परिव्राजक मण्डलीको (विरक्तोंको) शिक्षा दी है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी स्वयं-भगवत्ताके शास्त्रीय प्रमाणोंको उद्धृत करनेसे पूर्व श्रीचैतन्य-चरितामृत आदि प्रामाणिक ग्रन्थोंमें वर्णित उनकी भगवत्तासूचक कतिपय अलौकिक लीलाप्रसंगोंको प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी भगवत्ता-प्रकाशक कतिपय अलौकिक लीलाएँ

(१)

बालक निमाई घुटनों और हाथोंके बल चलने लगा है। श्रीजगन्नाथ मिश्र एवं श्रीशचीदेवी उसकी बालसुलभ क्रीड़ाओंको निहारकर फूले नहीं समाते। उस दिन शामको भारतके तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए एक भक्त विप्र घरपर अतिथि थे। मिश्रदम्पतिने श्रद्धापूर्वक लीप-पोतकर चौका लगाकर रसोईकी सामग्री प्रस्तुत की। विप्र महोदयने स्वयं पाक किया और विधिपूर्वक अपने इष्टदेव श्रीबोलगोपालको भोग निवेदन कर उनका ध्यान करने लगे। इसी बीच कुछ शब्द सुनकर चौंक पड़े। आँखे खुलने पर देखा बालक निमाई किलकारियाँ मारता हुआ भोगके थालमें हाथ डालकर प्रसाद ग्रहण कर रहा है। ब्राह्मण देवता हाय-हाय करने लगे। मिश्र और मिश्राणी यह देखकर बड़े दुःखी हुए। उनके बार-बार अनुरोध करनेपर विप्रने दूसरी बार रन्धन किया और पुनः भोग लगाया। परन्तु इस बार भी चंचल निमाईने न जाने कहाँसे उपस्थित होकर भोगको जूठा कर दिया। विप्रदेव पुनः हाय-हाय करने लग गये। इस बार मिश्र-दम्पतिको बहुत दुःख हुआ। रात भी काफी हो चुकी थी। परन्तु निमाईके बड़े भाई विश्वरूपके अत्यधिक आग्रहके कारण विप्रने तीसरी बार रसोई तैयार कर भोग निवेदन किया। इस बार

बालक निमाईको पड़ोसीके घरमें बन्द करके रखा गया। किन्तु आश्चर्यकी बात हुई कि ज्योंही विप्रने भोग अर्पण कर आँखे बन्द की और गोपाल मन्त्र जपना आरम्भ किया, त्योंही बालक निमाई हँसता हुआ भोग थालमें हाथ लगा कर खाते हुये दिखाई पड़ा। विप्रदेव पुनः हाहाकार कर उठे। इतनेमें निमाई शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुये चतुर्भुज रूपमें एवं एक हाथमें मक्खन रख दूसरेसे मक्खन खाते हुये अदभुत सौंदर्य-मण्डित बालगोपाल रूपमें दर्शन दिया। सौभाग्यवान् विप्रदेव अपने इष्टका दर्शन कर प्रेमसे गद्‌गद हो पड़े। भगवान् विप्रको अपनी इस लीलाको गुप्त रखनेका आदेश देकर अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मण-देवता उस रूपका चिन्तन करते हुए प्रेमसे महाप्रसाद पाकर कृतकृत्य हो गये।

(२)

नवद्वीपकी पण्डित-मण्डली अत्यन्त चिन्तित हो उठी है। दिग्विजयी पण्डित केशव काश्मीरी भारतके समस्त प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पण्डितोंको शास्त्रार्थमें पराजित करते हुए हजारों घोड़ों, हाथियों और शिष्योंको साथ लेकर नवद्वीप विजयके लिए पधारे हैं। नगरमें सर्वत्र इसीकी चर्चा है। पूर्णिमाका चन्द्र अपनी शुभ्र-सुशीतल ज्योत्सनाको सर्वत्र बिखरते हुये पूर्व दिशासे झाँक रहा है। भगवती भागीरथीके मनोरम तटपर प्रखर प्रतिभासम्पन्न किशोर अवस्थावाले पण्डित निमाई अपनी छात्र-मण्डलीके बीचमें

बैठकर विद्या-चर्चा कर रहे हैं। दैवयोगसे दिग्विजयी पण्डित भी घूमते-फिरते वहीं उपस्थित हुए। छोटे-छोटे बालकोंको विद्या-चर्चा करते हुए देखकर वे भी उन्हींके बीच बैठकर उनसे वार्तालाप करने लग गये। उन्होंने निमाई पंडितजीसे पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है? क्या पढ़ते हो?" निकट बैठे हुए एक छात्रने उत्तर दिया—"ये ही हमारे निमाई पंडितजी हैं।" दिग्विजयी पण्डित पहले ही निमाई पण्डितके सम्बन्धमें सुन चुके थे। वे उनकी प्रतिभा देखकर कुछ सहमसे गये। निमाई पण्डितने बात बदलकर दिग्विजयी पण्डितसे पापनाशिनी गङ्गाका माहात्म्य वर्णन करनेके लिए कहा। कहने मात्रकी देर थी कि दिग्विजयी पण्डित विभिन्न अलङ्कारोंसे युक्त सुन्दर, सरस एवं सर्वथा नवीन सैकड़ों श्लोक सुस्वरसे धड़ाधड़ बोलने लगे। छात्रमण्डली स्तब्ध और अवाक रह गई। ऐसा अद्भुत पाण्डित्य सरस्वतीके वरसे ही सम्भव है।

अपनी प्रतिभाकी धाक जमाकर दिग्विजयी पण्डित गर्वसे छात्रमण्डलीकी ओर देखने लगे। परन्तु उससे भी आश्चर्यकी बात यह हुई कि अति क्षिप्रतासे कहे गए सर्वथा नवीन श्लोकोंके बीचका एक श्लोक उच्चारण करते हुए निमाई पण्डितने दिग्विजयी पण्डितसे उक्त श्लोकके दोष-गुण विवेचन करनेके लिए निवेदन किया।

दिग्विजयी पण्डितने मन-ही-मन विस्मित होते हुए भी ऊपरसे कहा—"दिग्विजयी पण्डितके श्लोकोंमें केवल

गुण–ही–गुण होते हैं, दोष नहीं।" और साथ ही साथ उसके पाँच गुण भी बतलाए। निमाई पण्डितने उक्त गुणोंके अतिरिक्त अन्य पाँच गुणोंको और अनेकों दोषोंमें से मुख्य पाँच दोषोंको दिखलाकर दिग्विजयीकी बोलती बन्द कर दी। दिग्विजयीकी प्रतिभा मलीन हो गई। वे सर्वस्व खोए हुए व्यापारीकी भाँति थके हारे और लज्जित होकर खेमेमें लौट आये और अपनी अप्रत्याशित पराजयका रहस्य जाननेके लिए अपनी आराध्या सरस्वतीका ध्यान करने लगे। सरस्वती देवीने उन्हें दर्शन देकर कहा—"आज मेरी आराधनाका यथार्थ फल तुम्हें मिला है। ये निमाई पण्डित कोई साधारण बालक नहीं हैं। बल्कि मेरे पति स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं। उनके चरणकमलोंमें शीघ्र आत्मसमर्पण करो।" दिग्विजयी पण्डित सवेरे ही निमाई पण्डितके चरणोंमें लकुटीकी भाँति गिरकर क्षमा प्रार्थना कर रहे थे। ठीक ही है, विद्याकी परिसमाप्ति भगवत् चरणारविन्दोंकी शरणागतिमें ही तो सार्थक है।

(३)

भक्तप्रवर श्रीवास पण्डित अपने गृहस्थित मन्दिरमें श्रीनृसिंह भगवानकी पूजा कर रहे थे। अकस्मात् श्रीशचीनन्दन गौरहरि उसी समय वहाँ उपस्थित हुए और पण्डित श्रीवासका नाम ले–लेकर पुकारने लगे। श्रीवास पण्डितने बाहर झाँककर देखा तो देखते ही रह गये। देखते–ही–देखते

श्रीशचीनन्दन गौरहरिने शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कर दिव्य चतुर्भुज नृसिंह रूप धारण कर लिया। पण्डित प्रेमसे गद्गद होकर उनकी विधिवत् पूजा कर विभिन्न नृसिंह मन्त्रों एवं स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति और पूजासे प्रसन्न हो उनको वरदान देकर पुनः हँसते हुए श्रीशचीनन्दन विश्वंभरके रूपमें प्रकट हो गये। श्रीवास पण्डित उनके चरणकमलोंपर गिरकर लोटने-पोटने लगे।

(४)

गौड़ प्रदेशमें यवन शासनकी संकीर्तन-सम्बन्धी निषेध आज्ञासे सर्वत्र ही भीषण आंतक छा रहा था। भक्तजन भी मन-ही-मन भयभीत हो रहे थे। श्रीशचीनन्दन गौरहरि भक्तजनोंकी मनोभावनाको समझ गये। कहीं पर श्रीमद्भागवतकी कथा हो रही थी—श्रीवराह अवतारका प्रसङ्ग चल रहा था। उस प्रसङ्गको सुनकर श्रीगौरसुन्दर श्रीवराहावेशसे गर्जन करते हुए परम भक्त श्रीमुरारिगुप्तके घर पधारे और वहाँ उन्होंने चतुर्भुज वराहमूर्ति प्रकटकर भक्तोंको निर्भय होकर संकीर्तन करनेका आदेश दिया। मुरारिगुप्तने उनका पूजन एवं स्तवन कर उन्हें प्रसन्न किया। उस दिनसे भक्तजन निर्भय होकर सर्वत्र जोर-जोरसे हरिनाम-संकीर्तन करने लगे।

(५)

व्यास-पूर्णिमाका दिन था। श्रीवास पण्डितके घरपर

श्रीमन्महाप्रभुजी, श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं सम्पूर्ण भक्तमण्डली एकत्रित थी। मृदु–मधुर स्वरसे हरिनाम–संकीर्तन चल रहा था। श्रीमन्महाप्रभुके निर्देशानुसार श्रीवास पण्डित श्रीव्यासपूजाका पौरोहित्य कर रहे थे। श्रीवास पण्डितने सर्वप्रथम श्रीपाद नित्यानन्दजीके हाथोंमें पुष्प, पुष्पमाल्य, चन्दन और पूजाकी अन्यान्य सामग्री देकर उन्हें श्रीव्यास–पूजनके लिए इंगित किया। श्रीनित्यानन्द प्रभु पहले तो भाव–विभोर होकर चुपचाप खड़े रहे, तत्पश्चात् अकस्मात् समीप ही बैठे हुए श्रीमन्महाप्रभुजीके गलेमें सचन्दन–पुष्पमाला डाल दी। गलेमें माला देते ही श्रीमन्महाप्रभुजी चार हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म और दो हाथोंमें हल और मूषल धारणकर षड्भुज स्वरूपमें प्रकट हो गये। श्रीनित्यानन्द प्रभु षड्भुज मूर्तिका दर्शन करके प्रेमातिरेकसे विह्वल होकर पृथ्वीपर गिरकर अचेत हो गये। श्रीमन्महाप्रभुजीने उक्त षड्भुजरूपका सम्वरण कर अपने कोमल करस्पर्शसे उनकी मूर्च्छा दूर कर दी। भक्तजन इस अपूर्व लीलाका दर्शन कर प्रेममें विह्वल होकर दोनों प्रभुओंकी परिक्रमा करते हुए उद्दण्ड भावसे नृत्य–कीर्तन करने लगे।

(६)

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुजी श्रीवास–भवनमें भगवद्भावमें आविष्ट होकर सात प्रहरतक भक्तोंको विविध प्रकारके वर प्रदान कर रहे थे, उनका वह भगवद्–आवेश पूरे सात प्रहरतक

चलता रहा। उनके आदेशसे श्रीनवद्वीपके एक छोरपर फूसकी टूटी-फूटी झोंपड़ीमें सारी रात उच्चस्वरसे संकीर्तन करनेवाले श्रीधर बुलाकर लाये गये। श्रीमन्महाप्रभुजीने अपनी किशोरावस्थामें इनसे प्रेम-कलह करके प्रतिदिन केलेके पत्ते या केलेका फूल (मोचा) अथवा थोड़ (केलेके पौधेके बीचकी कोमल डण्डी) कुछ न कुछ अवश्य लेते और उन्हें घर ले जाकर सब्जी बनवाकर भगवदर्पणके पश्चात् बड़े प्रेमसे पाते। उन श्रीधरको उपस्थित देखकर श्रीमन्महाप्रभुजी बड़े प्रसन्न हुए और उनको अपना दिव्य-स्वरूप दर्शन कराया। श्रीधरने देखा—अद्भुत श्यामसुन्दर मदनमोहन श्रीकृष्णरूप। अधर पल्लवोंपर मोहनवंशी विराजमान है, दक्षिणमें श्रीबलरामजी सुशोभित हैं। ब्रह्मा, शिव, सनत्कुमार, नारद और शुकादि नानाप्रकारसे स्तवन कर रहे हैं। इस स्वरूपका दर्शन करते ही भक्त श्रीधर प्रेममें विह्वल हो पड़े। शरीरकी सुध-बुध जाती रही। वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

(७)

उपरोक्त दिन ही राम-भक्त श्रीमुरारिगुप्तको श्रीमन्महाप्रभुजीने जगज्जननी श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजीके साथ नव-दूर्वादल श्यामकान्तिविशिष्ट परम मनोहर रामचन्द्रके रूपसे दर्शन दिया था।

(८)

एक दिन श्रीअद्वैताचार्यजी श्रीवास-अंगनमें गोपी-भावमें

आविष्ट होकर नृत्य कर रहे थे। उनका नृत्य किसी प्रकार रुक नहीं रहा था। भक्तजनोंने बड़े प्रयत्नसे किसी प्रकार उनको स्थिर किया। परन्तु उनका भावावेश दूर नहीं हुआ। अब वे कृष्ण-विरहमें अति आर्त होकर 'हा कृष्ण! हा कृष्ण!' पुकारते हुए रो-रोकर आँगनमें लोटने लगे। सर्वान्तर्यामी श्रीमन्महाप्रभुजी उनकी वैसी दशा अवगत होकर अपने घरसे शीघ्र ही श्रीवास-अंगनमें उपस्थित होकर बोले "आचार्य! क्या अभिलाषा है?" अद्वैताचार्यने प्रार्थनाके स्वरमें कहा—"श्रीकृष्णावतारमें अर्जुनको दिखलाये हुए विश्वरूपका दर्शन करना चाहता हूँ।" इतना कहनेके साथ ही अद्वैताचार्यने विस्मित होकर देखा कि गौराङ्ग महाप्रभु विराट एवं भीषण 'विश्वरूप' धारणकर उनके सामने खड़े हैं। दोनों सैन्यदलोंके मध्यमें उस अद्‌भुत विश्वरूपका दर्शन कर अर्जुन हाथ जोड़कर स्तव कर रहे हैं। अद्वैताचार्य भी परम विस्मित होकर स्तव-स्तुति करने लगे। उसी समय श्रीनित्यानन्द प्रभु भी वहाँ उपस्थित हुए। वे तो विश्वरूपका दर्शन करके आँखे बन्दकर दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े।

(९)

कटवाग्राममें संन्यास ग्रहण कर श्रीराधाभावद्युतिसुवलित श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु कृष्ण-मिलनकी तीव्र उत्कण्ठासे आतुर होकर 'हा कृष्ण'! 'हा प्यारे कृष्ण!' आर्तनाद करते हुए श्रीजगन्नाथपुरी पधारे। वहाँ मन्दिरमें श्रीजगन्नाथजीका

दर्शन करके 'प्राणनाथ कृष्णको पा लिया' ऐसा कहते हुए आवेगमें भरकर उनका आलिंगन करनेके लिए दौड़े। किन्तु वहाँ तक पहुँचनेके पूर्व ही बेसुध होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके अङ्गोंमें सुद्दीप्त अष्ट-सात्त्विक आदि भावोंको लक्ष्य कर वहाँ उपस्थित तत्कालीन अतुलनीय प्रकाण्ड विद्वान एवं राजपण्डित सार्वभौम भट्टाचार्यको बड़ा ही चमत्कार हुआ। उन्होंने सोचा कि इस व्यक्तिके अंगोंमें प्रेमकी सर्वोच्च दशामें प्रकट होनेवाले जो अष्टसात्विक आदि भाव-समूह दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे किसी मनुष्य शरीरमें संभव नहीं हैं। अतएव ये निश्चित ही कोई विलक्षण महापुरुष हैं। ऐसा सोचकर उन्हें अचेतावस्थामें ही उठवाकर अपने घर ले गये। चेतना लौटने पर अपने भगिनिपतिके मुखसे उक्त नव-संन्यासीका पूर्व परिचय पाकर बड़े प्रसन्न हुए।

दो-चार दिन बीतनेपर सार्वभौम भट्टाचार्य महोदयने नव-संन्यासीको संन्यास-धर्मकी रक्षाके लिए 'वेदान्त सूत्र' पढ़ाना आरम्भ किया। सार्वभौम भट्टाचार्य वेदान्तसूत्रके शंकर-भाष्यके तत्कालीन भारतके मूर्धन्य पण्डित माने जाते थे। वे लगातार सात दिनोंतक नव-संन्यासीको मौनभावसे श्रवण करते देखकर बड़े विस्मित हुए। उन्होंने पूछा—'आखिर कुछ समझते हो या नहीं? 'श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने सरलतासे उत्तर दिया—वेदान्तके सूत्रोंको तो बड़े ही स्पष्ट रूपसे समझता हूँ, परन्तु आपकी

व्याख्यासे सूत्रोंका स्वाभाविक अर्थ आच्छादित हो जानेसे मुझे बड़ा ही दुःख होता है। सूत्रोंसे स्वाभाविक रूपमें अभिधा वृत्ति द्वारा परमब्रह्मके चिन्मय नाम, रूप, गुण, लीला एवं उनकी अघटन-घटन-पटीयसी पराशक्तिका बोध होता है। परन्तु आपकी व्याख्यामें कल्पनाके आधारपर लक्षणा वृत्ति द्वारा परमब्रह्मको निर्विशेष, निराकार प्रमाणित करनेका केवल दुराग्रह दिखलायी पड़ता है।

भट्टाचार्यने पूर्वपक्ष करते हुए सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं कूट युक्ति-तर्कोंकी अवतारणा की। परन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने अपने प्रबल शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंसे उनको निरुत्तर कर दिया। अन्तमें सार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीमद्भागवतके 'आत्मारामाश्च' श्लोकका अर्थ पूछा। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके पूर्वकृत नौ प्रकारके अर्थोंको छोड़कर अट्ठारह प्रकारके सर्वथा नवीन अर्थ बतलाये। सार्वभौमजी श्रीमन्महाप्रभुजीके श्रीचरणकमलोंमें गिर पड़े। श्रीमहाप्रभुजीने कृपाकरके उन्हें पहले चतुर्भुज नारायण-स्वरूपके और पीछे द्विभुज मुरलीधर श्यामसुन्दर रूपके दर्शन कराये। सार्वभौमजी कृतकृत्य होकर उनकी स्तुति करने लगे—

वैराग्य-विद्या निजभक्तियोग, शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्य शरीरधारी, कृपांबुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये॥

(१०)

श्रीचैतन्य महाप्रभुजी श्रीजगन्नाथपुरी एवं दक्षिण भारतको कृष्ण-प्रेमसे आप्लावित करते हुए क्रमशः गोदावरीके तटपर पधारे। वहाँ उनकी भेंट आंध्र-प्रदेशके प्रधान शासक (Governor), परम रसिक महाभागवत राय रामानन्दजीसे हुई। दोनोंमें प्रेम-तत्वकी साधनावस्थाके प्रथम सोपानसे प्रारंभकर उसकी सर्वोन्नत साध्यावस्थाके चरम सोपानतकके विषयमें परम चमत्कारपूर्ण वार्त्तालाप हुआ। अंतमें राय रामानन्दजीको ऐसा प्रतीत हुआ कि यह संन्यासी और कोई नहीं, श्रीराधाभावद्युति-सुवलित साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण ही हैं। अपनी भगवत्ता छिपानेकी भरसक चेष्टा करने पर भी प्रेमी भक्तके सामने श्रीचैतन्य महाप्रभुजी अपनेको गुप्त न रख सके। उन्होंने राय रामानन्दजीको महाभावस्वरूपा श्रीमती राधिका द्वारा आलिंगित रसराज कृष्णके रूपमें दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया।

(११)

श्रीचैतन्य महाप्रभुजी दक्षिणके तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए कूर्माचल धाममें उपस्थित हुए। उनके भावमय नृत्य और कीर्त्तनसे आकृष्ट होकर श्रद्धालु भक्तोंकी अपार भीड़ एकत्र होने लगी। अगिणत जन उनके प्रभावसे वैष्णव हो गये।

कूर्माचलके पास ही एक श्रद्धालु विप्र रहते थे। उनका नाम वासुदेव था। उनके सारे अङ्गोंमें गलित कुष्ठ

था, जिनमें असंख्य कीड़े भरे पड़े थे। जब कोई कीड़ा उनके अङ्गस्थित घावोंसे निकलकर पृथ्वीपर गिर पड़ता, तब वे यह सोचकर कि ये कीड़े मर न जावें, उन्हें उठाकर पुनः उनके पूर्व स्थानमें रख लेते। धन्य है दयालुताकी सीमाको!

जब कुष्ठ-विप्र श्रीचैतन्य-महाप्रभुके आगमनका वृत्तान्त अवगत हुए, तो वे भी उत्कण्ठासे उनके दर्शनोंके लिए चल पड़े। श्रीचैतन्य महाप्रभुके समीप श्रद्धालु जनोंकी भीड़ लगी हुई थी। कुष्ठ विप्र अपनी घृणित अवस्थाका विचार कर दूरसे ही दण्डवत्प्रणाम करते हुए भावातिरेकसे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। सर्वान्तर्यामी करुणावरुणालय श्रीचैतन्य महाप्रभु कुष्ठ विप्रको दूरसे पृथ्वीपर गिरते हुए देखकर तुरन्त दौड़कर उनके समीप पहुँचे और उन्हें अपने करकमलोंसे उठाकर प्रेमसे आलिंगन किया। महाप्रभुजीके त्रैलोक्यपावन स्पर्शसे विप्रका कुष्ठ रोग तत्काल ही सदाके लिए दूर हो गया। उनका शरीर अत्यन्त सुन्दर सुकान्त बन गया। यही नहीं, उन सौभाग्यशाली विप्रके अङ्गोंमें कृष्ण-प्रेमके भावसमूह भी प्रकट हो गये। वे श्रीचैतन्य महाप्रभुको ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके रूपमें दर्शनकर विविध प्रकारसे उनकी स्तव-स्तुति करने लगे।

(१२)

श्रीरथयात्राके दिन श्रीजगन्नाथपुरीमें अपार जनसमूह उमड़ रहा था। भक्तजन बड़ी उत्कण्ठासे श्रीरथयात्राका

दर्शन कर रहे थे। महाराज श्रीप्रतापरुद्र स्वयं रथके आगे-आगे स्वर्ण सम्मार्जनीसे पथ परिष्कार कर चन्दन और केवड़ाके जलसे सिंचन करते-करते जा रहे थे। 'जय जगन्नाथ'के उच्च घोषोंसे आकाशमण्डल परिव्याप्त हो रहा था। श्रीरथके आगे-पीछे और दोनों बगलोंमें सात कीर्त्तन मण्डलियाँ उन्मत्त होकर नृत्य और कीर्तन कर रहीं थीं, श्रीचैतन्यमहाप्रभु भी दोनों हाथोंको उठाकर प्रेमसे विभोर होकर कभी एक दलमें और कभी दूसरे दलमें नृत्य कर रहे थे। इसी बीच परम भक्त महाराज प्रतापरुद्रको एक बड़ा ही चमत्कार दिखाई पड़ा। श्रीचैतन्यमहाप्रभु अपने अघटनघटन-पटीयसी योगमायाके प्रभावसे एक ही समय सातों संकीर्त्तन मंडलियोंमें सात रूप धारण कर भावावेशमें नर्त्तन कर रहे थे। प्रत्येक मंडलीके भक्तजन महाप्रभुजीको केवल अपने ही बीच देखकर और भी उल्लसित होकर नृत्य कीर्त्तन कर रहे थे। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी इस अलौकिक लीलाका दर्शन केवलमात्र महासौभाग्यवान महाराज प्रतापरुद्र एवं सार्वभौम भट्टाचार्यजीके लिए ही सम्भव हुआ। वे परस्पर एक दूसरेके सौभाग्यकी प्रशंसा करने लगे।

(१३)

भक्तोंके अत्यधिक आग्रहसे श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने केवलमात्र बलभद्र भट्टाचार्यको साथ लेकर झारिखंडके बीहड़ वनपथसे वृन्दावनके लिए यात्रा की। कटकको दाहिने रखकर कुछ दूर आगे बढ़नेपर घनघोर जंगल

मिला। स्थान-स्थानपर बनैले पशु मिलने लगे। श्रीमन्महाप्रभुजी कृष्ण-विरहके आवेशमें बाह्यज्ञानशून्य होकर—"हा कृष्ण! हा प्राणनाथ!!" पुकारते हुए उन्मत्तकी भाँति चले जा रहे थे। सिंह, भालू, हाथी और गेंड़ा आदि हिंसक पशु एवं विषधर सर्प आदि महाप्रभुका दर्शनकर मार्ग छोड़कर किनारे हट जाते थे। भट्टाचार्य भयके मारे काँपने लगते।

एक दिन तो महाप्रभुजीका पैर रास्तेमें सोये हुए एक भयंकर बाघके ऊपर पड़ गया। महाप्रभु आँखे खोलकर बाघको देखकर प्रेमसे बोले-"कृष्ण बोलो, कृष्ण बोलो"। बाघ उठकर नृत्य करते हुये, 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करने लगा। एक दूसरे दिन महाप्रभुजी जंगलके भीतर नदीमें स्नान कर रहे थे कि मदमत्त हाथियोंका एक दल जलपान करनेके लिए उसी स्थलपर आ पहुँचा। महाप्रभुजीने हाथमें जल लेकर 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करते हुए उन हाथियोंके ऊपर फेंक दिया। फिर तो जिन जिन हाथियोंके शरीरपर जलके छींटे लगे, वे सभी जोरोंसे 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण कर नृत्य करने लगे।

इसी प्रकार वे वन-मार्गमें प्रतिदिन आर्त स्वरसे "हा कृष्ण हा कृष्ण!!" पुकारते हुये चलते। पीछे-पीछे सिंह, बाघ, भालू, हिरण और मयूर आदि पशु-पक्षी परस्पर वैर भूलकर प्रेमसे एक साथ श्रीचैतन्यदेवके मुखारविन्दको निहारते हुए चलते। कभी-कभी बाघ और हिरण एक दूसरेका मुख चुम्बन करते। आश्चर्यजनक दृश्य था। झारिखण्डके समस्त स्थावर-जंगम श्रीचैतन्य महाप्रभुके

कृष्ण प्रेमकी बाढमें डूब–उतरा रहे थे। भगवत् कृपासे असम्भव भी सम्भव हो जाता है। बलभद्र भट्टाचार्य पग–पगपर महाप्रभुकी विचित्र लीलाओंको देखकर विस्मित तथा मुग्ध हुए पीछे–पीछे चल रहे थे।

(१४)

सार्वभौम भट्टाचार्यजी श्रीमन्महाप्रभुके बड़े कृपापात्र थे। किन्तु इनका जामाता अमोघ कुछ कुटिल स्वभावका युवक था। वह बिना कारण ही भगवान और भक्तोंका छिद्रान्वेषण करता था। सार्वभौम भट्टाचार्यजी उसके इस स्वभावसे बड़े दुःखी रहते थे। एकदिन अकस्मात् उसे भीषण विसूचिका(हैजा) हो गया। कुछ ही देरमें उसके अंग शिथिल हो गये और 'अब मरा, तब मरा' की दशा हो गई। घरमें रोना–पीटना आरम्भ हो गया। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीको यह सम्वाद मिलते ही वे झट भट्टाचार्यके घर पधारे और बड़े प्यारसे अमोघकी छातीपर हाथ फेरते हुए बोले—अहो! तुम तो सरल ब्राह्मण हो, मत्सरता चाण्डालिनीको भला अपने इस पवित्र हृदयमें क्यों बैठा रखे हो? सार्वभौमके सत्सङ्गसे अब तुम्हारे जन्म–जन्मांतरके पाप दूर हो गये। उठो, "कृष्ण" "कृष्ण" बोलो। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके कोमल करकमलोंके स्पर्शसे अमोघ पूर्ण स्वस्थ तो हो ही गया, अधिकन्तु मरण–शय्यासे उठकर प्रेमोन्मत्त हो 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते हुए नृत्य करने लगा। उसके अंगोंमें अश्रु, पुलक, कम्प, स्वेद आदि प्रेमके अष्ट सात्त्विक विकारोंको देखकर सार्वभौम भट्टाचार्य

और श्रीमन्महाप्रभुके पार्षदवृन्द आश्चर्यचकित हो गए। ऐसा क्यों न हो? श्रीमहाप्रभुका यह कथन है कि "भक्तोंके बन्धु-बान्धवोंकी तो बात ही क्या, उनके दास-दासी तथा कुत्ते तक मुझे बड़े प्रिय हैं।"

(१५)

श्रीचैतन्य महाप्रभु अब दिन-रात विरहिणी श्रीमती राधिकाकी भाँति कृष्ण विरहमें तड़पते हुए 'हा कृष्ण' 'हा कृष्ण' किया करते। श्रीस्वरूप-दामोदर और राय-रामानन्दजी उनके भावोंके अनुरूप रासपञ्चाध्यायी, भ्रमरगीत आदिके श्लोक, कृष्णकर्णामृत, चण्डीदास और विद्यापतिके पद आदि सुनाकर उन्हें सान्त्वना देनेकी चेष्टा करते। किन्तु उससे उनका विरह और भी द्विगुणित हो उठता। वे कभी राते, कभी हँसते, कभी मूर्छित हो जाते। कभी-कभी तो किसी अपूर्व भाव दशाको प्राप्त हो जाते।

एक दिन अर्द्ध-रात्रितक कृष्ण-कथाके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभुजीको विश्राम करते हुए अनुमानकर स्वरूपदामोदर और राय रामानन्द विश्राम करने चले गए। उस समय महाप्रभुजी गंभीरा नामक एक छोटेसे घरमें रहते थे। उन दोनोंके चले जाने पर महाप्रभुजीके प्रिय सेवक गोविन्द गंभीराके द्वारपर लेट गए, जिससे महाप्रभुजी कहीं बाहर न चले जाँय। उनको कुछ झपकी-सी लग गई। इसी बीच श्रीचैतन्य महाप्रभुजीको अकस्मात् कृष्णकी मधुर वेणु-ध्वनि सुनाई दी। वे तुरन्त भावावेशमें उठकर उसी ओर दौड़ पड़े। रास्तेमें गोविन्द सोये रह गए। तीनों

प्रकोष्ठोंके तीनों फाटक ज्यों–के–त्यों लगे रहे। महाप्रभुजी सबको पारकर न जाने किस प्रकार बाहर निकल गये। कुछ देर तक महाप्रभुजीका शब्द सुनाई न पड़ने पर गोविन्दको कुछ सन्देह हुआ। वे महाप्रभुजीको वहाँ न देखकर चारों ओर खोजने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने स्वरूपदामोदरको उठाया, फिर दोनोंने प्रदीप जलाकर क्रमसे तीनों प्रकोष्ठोंमें भलीभाँति खोजकर फाटकोंको खुलवाकर सिंहद्वार पर आये। वहाँ उन्होंने महाप्रभुजीको एक अद्भुत अवस्थामें गायोंके झुन्डके बीच अचेतन पड़े हुए देखा। उनका सारा अंग पुलकित हो रहा था, मुखसे फेन गिर रहा था, आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उनके हाथ–पैर कछुएकी भाँति उनके पेटके भीतर प्रविष्ट हो गए थे, मानो कोई गोल–मोल पोटली पड़ी हुई हो। महाप्रभुजीको इस अद्भुत अवस्थामें देखकर भक्तवृन्द बड़े विस्मित एवं भयभीत हुए। किसी प्रकार उन्हें उठाकर गंभीरामें ले आये और सभी मिलकर जोरोंसे कृष्णनाम–संकीर्त्तन करने लगे। कुछ देर बाद महाप्रभुजीको अर्द्ध बाह्य–ज्ञान हुआ। उनके हाथ–पैर पुनः पेटसे बाहर निकल आये। अब वे कृष्ण–विरहमें फूट–फूटकर रोने लगे। सम्पूर्ण भक्त–मण्डली अवाक् थी।

स्वयं–भगवत्ताके शास्त्रीय प्रमाण

मंगलाचरण (क)

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः ॥१॥

(श्रीरूप गोस्वामी–कृत विग्धमाधवे)

सुवर्णकान्तिसमूह द्वारा देदीप्यमान श्रीशचीनन्दन गौरहरि तुम्हारे हृदयमें स्फूर्ति लाभ करें। उन्होंने जिस सर्वोत्कृष्ट उज्ज्वल रसका दान जगत्को चिरकाल तक नहीं दिया, उसी स्वभक्ति–सम्पत्तिका दान करनेके लिए वे कलियुगमें अवतीर्ण हुए हैं।

(ख)

श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा–
स्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयः।
सौख्यञ्चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभा–
त्तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः ॥२॥

(श्रीस्वरूप गोस्वामी–कडचा)

(१) स्वरूपशक्तिरूपा श्रीमती राधिकाजीके अलौकिक प्रेमकी महिमा कैसी है?

(२) श्रीमती राधिकाजी जिसका आस्वादन करती हैं, वह मेरी अद्भुत मधुरिमा कैसी है?

(३) मेरी मधुरिमाकी अनुभूतिसे श्रीमती राधिकाको

कौन-सा अनिर्वचनीय सुख मिलता है?

इन तीन लालसाओंकी पूर्तिकी अभिलाषासे राधाभावद्युतिसंवलितनु श्रीकृष्णचन्द्र श्रीशचीगर्भ-समुद्रके श्रीगौराँगदेवके रूपमें आविर्भूत हुए।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतींगना॥३॥

(विष्णु पुराणे ६/५/७)

१. अणिमादि सिद्धियों द्वारा स्वतः ही सिद्ध समस्त ऐश्वर्य, २. सम्पूर्ण पराक्रम, ३. विशिष्ट यश, ४. सम्पूर्ण लक्ष्मी, ५. समस्त ज्ञान, ६. सर्वोत्तम पूर्ण वैराग्य—ये छहों 'भग' पदवाच्य हैं, अर्थात् ये सब गुण जिसमें पूर्णरूपेण विकसित हों वही 'भगवान' कहा जाता है। श्रीगौराँङ्ग महाप्रभुमें भी इन सबका साकल्येन विकाश तत्कालीन महापुरुषोंने देखा।

उपमान प्रमाण

पंचदीर्घः पंचसूक्ष्मः सप्तरक्तः षडुन्नतः।
त्रिह्रस्वपृथुगंभीरो द्वात्रिंशल्लक्षणो महान्॥४॥

(सामुद्रिके)

पंचदीर्घः—पंचसु—नासा-भुज-हनु-नेत्र-जानुषु दीर्घः।
पंचसूक्ष्मः—पंचसु—त्वक्-केशांगुलिपर्व-दन्तरोमसु सूक्ष्मः।
सप्तरक्तः—सप्तसु—नेत्रान्त-पादतल-करतल-ताल्वधरौष्ठ-जिह्वानखेसु रक्तः।
षडुन्नतः—षट्सु-वक्षः-स्कन्ध-नख-नासिका-कटि-मुखेषु

उन्नतः।

त्रिह्रस्वः—पृथु–गंभीरः त्रिह्रस्वः त्रिपृथुः त्रिगंभीर इत्यर्थः।

तत्तद्यथा—

त्रिषु—ग्रीवा–जंघा–मेहनेषु ह्रस्वता।

पुनस्त्रिषु—नाभि–स्वर–स्त्वेषु गंभीरतेति। एतानि द्वात्रिंशत् लक्षणानि यस्य, सः महान् पुरुष इति।

भावार्थ–१. नासिका, २. भुज युगल, ३. हनु (ठोड़ी), ४. नेत्र, ५. जानु—ये पाँच अंग जिसके दीर्घ हों, ६. त्वचा, ७. केश, ८. अंगुलिपर्व, ९. दन्त, १०. रोम—ये पाँच अंग जिसके सूक्ष्म हों, ११. नेत्रप्रान्त, १२. पादतल, १३. करतल, १४. तालु, १५. अधरौष्ठ, १६. जिह्वा, १७. नख—ये सात अंग जिसके स्वाभाविकी लालिमा धारण किये हों, १८. वक्षःस्थल, १९. स्कन्ध, २०. नख, २१. नासिका, २२. कटि, २३. मुख—ये छः अंग जिसके उन्नत हों, और जिसके अंगमें क्रमशः २४. ग्रीवा, २५. जंघा, २६. जननेन्द्रियमें ह्रस्वता, २७. कटि, २८.ललाट, २९. वक्षःस्थलमें विशालता, एवं ३०. नाभि, ३१. स्वर, ३२. बुद्धिमें गंभीरता हो, वह महापुरुष होता है। ये सब लक्षण श्रीगौरांग महाप्रभुमें भी थे।

संभव प्रमाण

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥५॥

(श्रीमद्भागवते १।३।२६)

श्रीसूतजी शौनकादि ऋषियोंसे बोले—हे ऋषियों! जैसे अपक्षयशून्य अगाध सरोवरसे हजारों छोटी-छोटी नदियाँ निकलती रहती हैं, उसी प्रकार विशुद्ध सत्त्वनिधि श्रीहरिके भी असंख्य अवतार समयानुसार होते रहते हैं। अतः पाखण्डामय पीड़ित भगवद्- धर्मकी रक्षाके लिए कलिकी प्रथम सन्ध्यामें श्रीहरिने "श्रीगौरांगदेव" के रूपमें अवतार लिया।

जाह्नवीतीरे नवद्वीपे गोलोकाख्ये धाम्नि गोविन्दो द्विभुजो गौरः★ सर्वात्मा महापुरुषो महात्मा महायोगी त्रिगुणातीत सत्त्वरूपो भक्तिं लोके काश्यति॥६॥

(अथर्ववेदीय चैतन्योपनिषदि)

★ "गौर" शब्दकी व्युत्पत्ति—श्रीराधाभावित श्रीगोविन्दका "गो" एवं श्रीगोविन्दभावित श्रीराधाका "रा" दोनों अक्षर मिलकर बन गया "गौर"। अथवा श्रीराधाकृष्ण प्रेमाधिक्यसे एकरूप होकर सर्वसाधारणको हरिनामाख्य संगीत प्रदान जिस रूपसे करते हैं उसीका नाम है "गौर" (ग+आ+अ+उ+र=गौर)—उक्तं चाभियुक्तैः-

अकारो भगवान् विष्णुः आकारो राधिकावरा।
उकारः कामरूपोऽयं रेफस्तु दानमुच्यते॥
गकारो हरिनामाख्यं गीतमित्यर्थवाचकम्।
प्रेम्णा श्रीराधयाकृष्णः संगीतं हरिनामकम्॥
यस्मै कस्मै प्रातीति स गौरो गदितो बुधैः॥

(परतत्वगौरे)

भावार्थ यह है कि भगवती भागीरथीके तटपर विद्यमान गोलोक नामसे प्रसिद्ध नवद्वीप धाममें, सर्वान्तर्यामी, महापुरुष महात्मा, महायोगी, त्रिगुणातीत, शुद्धसत्त्वस्वरूप, षड़ैश्वर्यपूर्ण श्रीगोविन्द भगवान् द्विभुज श्रीगौरांग रूपसे अवतीर्ण होकर लोकमें भक्तिका प्रकाश करेंगे। ये सर्वान्तर्यामी प्रभृति गुण श्रीगौरांग महाप्रभुमें स्पष्ट रूपमें अनुभूत हुए हैं।

एको देवः सर्वरूपी महात्मा गौरो रक्तश्यामलश्वेतरूपः।
चैतन्यात्मा स वै चैतन्यशक्तिर्भक्ताकारो भक्तिदो भक्तिवेद्यः॥७॥

नमो वेदान्तवेद्याय कृष्णाय परमात्मने।
सर्वचैतन्यरूपाय चैतन्याय नमो नमः॥८॥

वेदान्तवेद्यं पुरुषं पुराणं चैतन्यात्मानं विश्वयोनिं महान्तम्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥९॥

(अथर्ववेदीय चैतन्योपनिषदि)

तात्पर्य यह है—दिव्यातिदिव्य गोलोकमें नित्यलीला परायण वह एक ही भगवान् सब रूप धारण करते हैं—अतः उदारचेता हैं। वही युग-भेदसे क्रमशः श्वेतरूपसे सत्ययुगमें, रक्तवर्णसे त्रेतामें, श्यामलवर्णसे द्वापरमें, गौररूपसे कलियुगमें अवतीर्ण होते हैं। वही प्रभु चैतन्यशक्ति श्रीचैतन्य महाप्रभु भक्ताकारमें विराजमान हैं। वे ही श्रीगौरहरिरूपसे शुद्ध प्रेमलक्षणा भक्तिके दाता हैं, अतः भक्तिसे जाननेयोग्य हैं॥७॥

निखिल वेदान्तके द्वारा जाननेयोग्य, श्रीकृष्णस्वरूप,

परमात्मा, सर्वचैतन्यरूप श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके लिए हमारा बारम्बार प्रणाम है॥८॥

वेदान्तवेद्य, सर्वान्तरात्मा, पुराणपुरुष, विश्वके आदिकारण जो पुरुषोत्तम भगवान् हैं, उनको श्रीचैतन्य महाप्रभु रूपसे जानकर ही जीव मृत्युसे छुटकारा पाता है। उनको पहचाने बिना अपने इष्टके पास जानेका और कोई भी मार्ग नहीं है, अर्थात् श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णचैतन्यदेवमें किंचिद् भी भेद नहीं है॥९॥

सप्तमे गौरवर्णविष्णोरित्यनेन स्वशक्त्या चैक्यमेत्य प्रान्ते प्रातरवतीर्य सह स्वैः स्वमनुं शिक्षयति। अस्य व्याख्यासप्तमे सप्तम मन्वन्तरे वैवस्वतमनौ गौरवर्णो भगवान् स्वशक्त्या ह्लादिनीशक्त्या ऐक्यं प्राप्य प्रान्ते कलौयुगे प्रातः प्रथमसन्ध्यायां अवतीर्णो भूत्वा सह स्वैः सपार्षदैः स्वमनुं हरेकृष्णादि जनान् शिक्षयति उपदिशतीत्यर्थः॥१०॥

(अथर्ववेदपुरुषबोधिन्याम्)

अर्थात् सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें कलियुगकी प्रथम सन्ध्यामें अपनी आह्लादिनी शक्तिसे एकता धारण कर अवतीर्ण हो अपने पार्षदोंसे मिलकर "हरे कृष्ण" इत्यादि अपने महामंत्रका उपदेश सर्वसाधारणके लिए करते हैं। सज्जनों! अकारण करुणावरुणालय श्रीमन् महाप्रभु चैतन्यदेवके सिवाय यह कार्य और कौनसे अवतारमें संघटित होता है? अतः वेदमें यह श्रीचैतन्यदेवके अवतारका ही वर्णन है।

इतोऽहं कृतसंन्यासोऽवतरिष्यामि सगुणो निर्वेदो निष्कामो भूगीर्वाणस्तीरस्थोऽलकनन्दायाः कलौ चतुःसहस्राब्दोपरि पंचसहस्राभ्यन्तरे गौरवर्णो दीर्घाङ्गः सर्वलक्षणयुक्त ईश्वरप्रार्थितो निजरसास्वादो भक्तरूपो मिश्राख्यो विदितयोगः स्याम्॥११॥

(अथर्वणस्य तृतीयकाण्डे ब्रह्मविभागानन्तरम्)

भावार्थ यह है कि देवताओं द्वारा अवतारके लिए प्रार्थना किये जाने पर भगवान श्रीकृष्ण उत्तर देते हुए बोले—चार हजार वर्ष कलिके बीत जानेके बाद एवं पाँच हजार वर्षके मध्यमें ही मैं गंगाजीके किनारे ईश्वर(शंकर)की अर्थात् शंकरावतार श्रीअद्वैताचार्यकी विशिष्ट प्रार्थनासे द्रवीभूत होकर—सन्यासरूप ग्रहण कर इस गोलोकसे सगुण, निर्वेद (वैराग्य), निष्काम ब्राह्मणके रूपमें अवतीर्ण होऊँगा। उस समय मेरा वर्ण गौर होगा। नेत्र भुजा आदि अङ्ग लंबायमान होंगे। सामुद्रिकोक्त महापुरुषोंके लक्षणोंसे युक्त निजरसास्वादका स्वयं रसास्वादन करनेवाले भक्ताकारमें मिश्रोपाधिसे भूषित ज्ञात होऊँगा। तात्पर्य—अधिकारीजन मुझको जान लेंगे।

विश्वंभर विश्वेन मां पाहि स्वाहा॥१२॥

(अथर्ववेदे)

प्रेमका दानकर त्रिभुवनको धारण और पोषण करनेवाले परमात्मा विश्वंभरके श्रीचरणोंमें आत्मसमर्पण करता हूँ। वे मेरी विश्वसे रक्षा करें।

तथाऽहं कृतसंन्यासो भूगीर्वाणोऽवतरिष्ये तीरेऽलकनन्दायाः

पुनः पुनरीश्वरप्रार्थितः सपरिवारो निरालम्बो निर्धूतेः कलिकल्मष–कवलितजनावलम्बनाय ॥१३ ॥

(चैतन्यरहस्यधृत सामवेदान्तर्गत ब्रह्मभागे)

पूर्वोक्त प्रकारसे ही संन्यास धारण करनेवाले ब्राह्मणके रूपमें गंगाजीके तीरवर्ती नवद्वीपमें श्रीअद्वैताचार्य द्वारा बारंबार प्रार्थित होकर किसीके अवलम्बनसे रहित अवधूत वेष धारण कर कलिकालके पातकपुंजोंसे ग्रसित जीवोंके अवलम्बनके लिए निज पार्षदों सहित अवतीर्ण होऊँगा।

ज्योतिरिवाऽधूमकः ॥१४ ॥

(कठोपनिषदि २।१।१३)

धूमरहित अग्निके समान प्रकाशमान प्रभुका रूप है।

हिरण्यश्मश्रुः हिरण्यकेशः आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः ॥१५ ॥

(छान्दोग्ये १।६।६)

प्रभुके मुखके लोम सुवर्णके समान हैं और शिरके केश भी सुवर्ण वर्णके ही हैं। और स्वतः प्रभु भी नखसे शिखतक सुवर्ण वर्णमय ही हैं। ये सब लक्षण श्रीचैतन्यदेवमें ही घटते हैं। अतः इस श्रुतिसे उन्हींके अवतारका बोध होता है।

अत्र ब्रह्मपुरं नाम पुण्डरीकं यदुच्यते।
तदेवाष्टदलं पद्मसन्निभं पुरमद्भुतम् ॥
तन्मध्ये दहरं साक्षात् मायापुरमितीर्यते।
तत्र वेश्म भगवतश्चैतन्यस्य परात्मनः ॥
तस्मिन् यस्त्वन्तराकाशो ह्यन्तर्द्वीपः स उच्यते ॥१६ ॥

(छान्दोग्यपनिषदि)

इस शरीरके भीतर ब्रह्मपुर नामक एक पद्म है। वह अद्‌भुत पुर अष्टदल कमलके आकारवाला है। इस पद्मके मध्यवर्ती 'दहर' नामक स्थान ही मायापुरके नामसे प्रसिद्ध है। वही मायापुर श्रीचैतन्यस्वरूप भगवान परमात्माका निवास स्थान है और उसके मध्यस्थित आकाश (अन्तराकाश) ही अन्तर्द्वीप कहलाता है।

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं
कर्तारमीशं पुरुष ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति॥१७॥

(मुण्डके ३।१।३)

भावार्थ—जिस समय वह जीव ईश्वरका दर्शन करता है तब विद्वान् पुण्य और पापोंको छोड़कर प्रकृतिसे बने इस देह और प्रकृति सम्बन्धसे रहित होकर परम समता (मित्रता) को प्राप्त होता है। उस परमात्माका वर्ण सुवर्णके समान मनोहर है, वे सर्वान्तर्यामी प्रभु जगत्‌के कर्ता एवं ब्रह्माजीके भी जनक हैं।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिऽमृत्युमेतिनान्यः पन्था विद्यैतेऽयनाय॥१८॥

(श्वेताश्वतरोपनिषदि ३।८)

भगवत्साक्षात्कार करनेवाला विशिष्ट भक्तराज कहता है—मैं उन पुराण-पुरुषोत्तमको उनकी कृपासे अच्छी तरहसे जानता हूँ। वह प्रकृतिमय लोकोंसे परे परव्योममें रहते हैं और उनका वर्ण सूर्यसे भी विशिष्ट देदीप्यमान

है। उनको जानकर ही जीव मृत्युके फन्देसे छूटता है, और उनकी प्राप्तिका दूसरा कोई पथ नहीं है।

महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्वस्यैष प्रवर्तकः।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः॥१९॥

(श्वेताश्वतरोपनिषदि ३।१२)

सर्वान्तर्यामी श्रीमन् महाप्रभुजी ही सुनिर्मल अपनी भक्तिरूपी मणिकी प्राप्तिके लिए अपनी अहैतुकी कृपासे प्राणी मात्रको प्रवृत्त करनेवाले हैं।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥२०॥

(श्वेताश्वतरोपनिषदि ६।७)

भावार्थ—भक्तजन कहते हैं—हम उन निखिल ब्रह्माण्ड-नायकदेवको जानते हैं जो शंकर, ब्रह्मा प्रभृति ईश्वरोंके भी महेश्वर अर्थात् नियन्ता हैं, देवताओंके भी परम पूज्य देवता हैं, प्रजापतियोंके भी प्रजापति हैं और प्रकृतिसे परे हैं।

भक्तप्रियो भक्तिदाता दामोदर इभस्पतिः।
इन्द्रदर्पहरोऽनन्तो नित्यानन्द चिदात्मकः॥२१॥
चैतन्यरूपश्चैतन्यश्चेतनागुणोर्जितः ।
अद्वैताचारनिपुणोऽद्वैतः परमनायकः॥२२॥
नीलः श्वेतः सितः कृष्णो गौरः पीताम्बरछदः॥२३॥
शचीसुतजयप्रदः॥२४॥

(नारदपंचरात्रे ज्ञानामृतसारे, रात्र ४, अ. ८,
बालकृष्णसहस्रनामस्तोत्रे ११६–११७, ८४, १५४)

इन श्लोकोंमें स्पष्टरूपेण भक्तिप्रिय, भक्तिदाता, दामोदर, चैतन्य, चैतन्यरूप, नित्यानन्द, अद्वैताचारनिपुण, अद्वैत, गौर-कृष्ण, शचीसुत आदि नामोंसे सपरिकर श्रीमन् महाप्रभुजीका बोध होता है।

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लोकान्
विभावयसि हन्सि जगत्प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्॥२५॥

(श्रीमद्भागवते ७।९।३८)

भक्तवर्य प्रह्लाद श्रीनृसिंहदेवकी स्तुति करते हुए कहते हैं—हे पुरुषोत्तम! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्यादि अवतार लेकर लोकोंका पालन तथा विश्व-द्रोहियोंका संहार करते हैं। इन अवतारोंके द्वारा आप प्रत्येक युगमें युगानुरूप धर्मकी रक्षा करते हैं, परन्तु कलियुगमें तो आप छिपकर गुप्तरूपसे अवतार धारण करते हैं। अतः आपका एक नाम "त्रियुग" भी है। यहाँ पर गुप्तावतारसे श्रीकृष्ण चैतन्यावतारका बोध पारिशेष्य न्यायसे होता है।

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥२६॥

(श्रीमद्भागवते १०।८।१३)

श्रीकृष्णचन्द्रके नामकरणके समयमें श्रीनन्द महाराजसे श्रीगर्गाचार्यजी कहते हैं—यह तुम्हारा साँवला पुत्र प्रत्येक

युगमें श्रीविग्रह धारण करता है। सत्ययुगमें इसका वर्ण श्वेत था, त्रेतामें रक्तवर्ण था, कलिमें पीतवर्ण था और अब द्वापरमें श्यामवर्ण है। अतः इसका नाम कृष्ण होगा। इस श्लोकमें पीत शब्द पारिशेष्य प्रमाणसे कलिपावनावतार श्रीगौरांग महाप्रभुजीका ही बोधक है।

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम्।
नाना तंत्रविधानेन कलावपि तथा शृणु ॥२७॥
कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्ण सांगोपांगास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥२८॥

(श्रीमद्भागवते ११।५।३१–३२)

उपर्युक्त प्रकारसे द्वापर युगके लोग जगदीश्वरकी स्तुति करते थे। अब वे ही जगदीश्वर कलियुगमें अवतीर्ण होनेपर जिस प्रकार नाना तंत्रोंके विधानोंके द्वारा पूजित होते हैं, उसे बतला रहा हूँ, श्रवण करो॥२७॥

जो 'कृष्ण' इन दोनों वर्णोंका कीर्तन करते हैं अथवा उपदेश करते हैं या कृष्ण इन दोनों वर्णोंके कीर्तन द्वारा कृष्णानुसंधानमें सर्वदा तत्पर रहते हैं, जिनके अंग श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैत प्रभु हैं, जिनके उपांग तदाश्रित श्रीवासादि शुद्ध भक्त हैं; जिनका अस्त्र हरिनाम शब्द है और जिनके पार्षद श्रीगदाधर–दामोदरस्वरूप–रामानन्द–सनातन–रूप आदि हैं, जो कान्तिसे अकृष्ण अर्थात् पीत (गौर) हैं उन्हीं बहिर्गौर राधाभावद्युति–सुवलित श्रीगौरसुन्दरकी कलियुगमें सुमेधागण (पण्डितजन) संकीर्तनप्रधान

यज्ञ द्वारा आराधना करते हैं॥२८॥

उक्त श्लोककी श्रीजीव गोस्वामी विरचित क्रम-सन्दर्भ-टीका—

श्रीकृष्णावतारानन्तर कलियुगावतारं पूर्ववदाह कृष्णेति। त्विषा कान्तया योऽकृष्णो गौरस्तं सुमेधसो यजन्ति। गौरत्वञ्चास्य "आसन् वर्णास्त्रयोह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः। शुक्लोरक्तस्तथापीत इदानीं कृष्णतां गतः॥" (भा॰ १०।८।१३) इत्यत्र पारिशेष्य प्रमाणलब्धम्। इदानीमेतदवतारास्पद-त्वेनाभिख्याते द्वापरे कृष्णतां गतः इत्युक्ते शुक्लरक्तयोः सत्य-त्रेता-गतत्वेन दर्शितत्वाच्च। पीतस्यातीतत्वं प्राचीन-तदवतारापेक्षया। अत्र श्रीकृष्णस्य परिपूर्णरूपत्वेन वक्ष्यमाण-त्वाद् युगावतारत्वं, तस्मिन् सर्वेऽप्यवतारा अन्तर्भूता इति तत्तत्प्रयोजनं तस्मिन्नेकस्मिन्नेव सिध्यतीत्यपेक्षया। तदेवं यद् द्वापरे कृष्णोऽवतरति तदैव (तस्मिन्नेव) कलौ श्रीगौरोऽप्यवतरतीति स्वारस्यलब्धेः श्रीकृष्णाविर्भावविशेष एवायं श्रीगौर इत्यायाति तदव्यभिचारात्। तदेदाविर्भावत्वं तस्य स्वयमेव विशेषण द्वारा व्यनक्तिकृष्णवर्णं कृष्णेत्येतौ वर्णौ च यत्र, तम्; यस्मिन्—श्रीकृष्णचैतन्यदेवनाम्नि कृष्णत्वाभिव्यंजक कृष्णेति वर्णयुगलं प्रयुक्तमस्तीत्यर्थः तृतीये श्रीमदुद्धववाक्ये (भा॰ ३।३।३) "समाहुताः" इत्यादि पद्ये "श्रियः सवर्णेन" इत्यत्र टीकायां श्रियो रुक्मिण्याः समान वर्णद्वयं वाचकं यस्य सः श्रियः सवर्णो रुक्मी इत्यपि दृश्यते यद्वा, कृष्णं वर्णयति-तादृश-स्वपरमानन्दविलास-

स्मरणोल्लास–वशतया स्वयं गायति परमकारुणिकतया च सर्वेभ्योऽपि लोकेभ्यस्तमेवोपदिशति यस्तम् अथवा स्वयमकृष्णं गौरं त्विषा स्वशोभाविशेषैणेव कृष्णोपदेष्टारञ्च। यद् दर्शनेनैव सर्वेषां कृष्णः स्फुरतीत्यर्थः। किम्वा सर्वलोकद्रष्टारं कृष्णं गौरमपि भक्तविशेषदृष्टौ त्विषा प्रकाशविशेषेण कृष्णवर्णम्। तादृश श्यामसुन्दरमेव सन्तमित्यर्थः। तस्मात्तस्मिन् श्रीकृष्ण रूपस्यैव प्रकाशात्तस्यैवाविर्भावविशेषः स इति भावः। तस्य श्रीभगवत्त्वमेव स्पष्टयति साङ्गोपांगास्त्रपार्षदमिति, अंगान्येव परममनोहरत्वादुपांगानि भूषणादीनि महाप्रभावत्वात्तान्येवास्त्राणि, सर्वदैवैकान्तर्वासित्वात्तान्येव पार्षदाः, बहुभिर्महानुभावैरसकृदेव तथा दृष्टोऽसाविति गौड़–वरेन्द्र–बंगोत्कपादिदेशीयानां महाप्रसिद्धेः। यद्वा अत्यन्त प्रेमास्पदत्वात्तत्तुल्या एव पार्षदाः श्रीमदद्वैताचार्य महानुभावचरणप्रभृतयस्तैः सह वर्तमानमिति चार्थान्तरेण व्यक्तम्। तदेवं भूतं कैर्यजन्ति? यज्ञैः पूजा–सम्भारैः (भा॰ १।१३।२४) 'न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः' इत्युक्तेः। तत्र विशेषेण तमेवाभिधेयं व्यनक्ति—संकीर्तन बहुभिर्मिलित्वा श्रीकृष्णगानसुखं, तत्प्रधानैः तथासंकीर्तनप्राधान्यस्य। तदाश्रितेष्वेव दर्शनात् स एवात्राभिधेय इति स्पष्टम्। अतएव सहस्त्रनाम्नि तदवतारसूचकानि नामानि कथितानि—"सुवर्णवर्णो हेमांगो वरांगश्चन्दनांगदी। संन्यासकृच्छमः शान्त" इत्येत्यानि। दर्शितं चैतत् परमविद्वच्छिरोमणिना श्रीसार्वभौमभट्टाचार्येण—"कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्त्तुं श्रीकृष्णचैतन्यनामा। आविर्भूतस्य पादारविन्दे गाढ़ंगाढ़ं लीयतां चित्तभृंग।" इति॥२९॥

—निमिराजके प्रश्न करनेपर नवें योगेश्वर श्रीकरभाजनजी उत्तर देते हुए अन्य युगावतारोंकी भाँति श्रीकृष्णावतारानन्तर कलियुगावतारका वर्णन करते हैं—बुद्धिमान जन कलियुगमें उन श्रीकृष्णका यजन-पूजन करते हैं जो कान्तिसे गौरवर्ण विशिष्ट हैं। इनका गौरव तो 'आसन् वर्णास्त्रयो' श्लोककी टीकामें पारिशेष्य प्रमाणसे व्यक्त कर दिया। इस श्लोकमें श्रीकृष्णके परिपूर्णत्व रूप प्रतिपादक होनेसे युगावतारत्व है। श्रीकृष्णमें ही सब अवतारोंका अन्तर्भाव होता है। वह प्रयोजन भी उन एकमें ही सिद्ध होता है। इसी कारण जिस द्वापर युगमें परिपूर्णतम पुराण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण होते हैं, उसी द्वापरके अनन्तर आनेवाले कलियुगमें ही श्रीगौरांगदेव भी अवतीर्ण होते हैं। यह बात स्वारस्यसे प्राप्त होती है। अतः यह श्रीगौरांगदेव श्रीकृष्णके आविर्भाव-विशेष ही हैं। उसी आविर्भावत्वको विशेषणों द्वारा स्वतः स्पष्ट करते हैं— 'कृष्णवर्णं' अर्थात् जिनके श्रीकृष्णचैतन्य नाममें कृष्णत्व प्रकाशक 'कृ' 'ष्ण' ये दो वर्ण भी विद्यमान हैं। इस प्रकारकी व्याख्याका प्रमाण भी "समाहुताः" भा०३।३।३ इत्यादि पद्यमें "श्रियः सवर्णेन"की टीकामें "लक्ष्मीस्वरूपा श्रीरुक्मिणीजीका बड़ा भाई" अर्थात् रुक्मीके नाममें भी रुक्मिणीजीके नामबोधक दोनों वर्ण हैं। अथवा अपनेसे अभिन्न अपने पूर्णावतार श्रीकृष्णके परमानन्दमय विलासके स्मरणसे उत्पन्न उल्लासके वशीभूत हो स्वयं श्रीकृष्णनामका

उच्च स्वरसे कीर्तन करते हैं और परम कारुणिकताके कारण समस्तजनोंके लिए ऐसा करनेका उपदेश भी देते हैं। अथवा स्वयं गौरवर्ण होकर भी अपने श्रीविग्रहकी शोभासे ही श्रीकृष्णभजनका उपदेश देते हैं। तात्पर्य यह है कि—जिनके दर्शनमात्रसे ही सबको श्रीकृष्णकी स्फूर्ति होने लगती है। अथवा सर्वसाधारण लोगोंकी दृष्टिमें गौरवर्णसे दीखते हुए भी भक्तविशेषकी दृष्टिमें "त्विषा" अर्थात् प्रकाश–विशेषसे कृष्णवर्ण विशिष्ट वैसे ही श्यामसुन्दर रूपमें विराजमान दीखते हैं। अतः श्रीगौरांगदेव श्रीकृष्णके आविर्भाव विशेष ही हैं, यह भावार्थ है।

श्रीगौराँगदेवकी भगवत्ताको स्पष्ट करते हैं। यथा—उनके समस्त अंग ही परममनोहर है। अतः वे ही भूषणस्वरूप हैं, अर्थात् भूषणोंसे ही उनके श्रीअंगकी शोभा नहीं बढ़ती, अपितु उनके श्रीअंगमें आनेसे भूषणोंकी ही शोभा बढ़ जाती है और महाप्रभावशाली होनेसे वे श्रीअंग ही दूसरोंको वशीभूत करनेके अस्त्र है। सर्वदा समीप रहनेके कारण वे ही पाषर्द–विशेष हैं, और तत्समकालीन बहुतसे महानुभावोंने उनके श्रीअंगमें रामकृष्णादि स्वरूपोंका दर्शन भी कई बार किया था। गौड़–वरेन्द्र–बंग–उत्कल आदि देशोंके निवासियोंकी यह बात विशेष प्रसिद्ध है, अथवा अत्यन्त प्रेमास्पद होनेसे उनके तुल्य ही जो महानुभाव श्रीअद्वैताचार्य प्रभृति पार्षदगण हैं, उनके साथ वर्तमान रहे हैं यह भी अर्थ व्यक्त है।

पूर्वोक्त गुणविशिष्ट श्रीगौरांगदेवका यजन किस प्रकारकी पूजा सामग्रियोंसे होता है? वहाँ कहते हैं—सब भक्तजन प्रेमपूर्वक मिलकर ताल-लय सहित उच्चस्वरसे मधुरतापूर्वक श्रीभगवन्नामसंकीर्तनप्राय यज्ञोंसे उनका यजन (पूजन) करते हैं, अर्थात् संकीर्तन ही कलियुगका प्रधान धर्म है एवं उसका विकास भी श्रीगौरचरणाश्रितजनोंमें ही अधिक मात्रामें देखा जाता है। अतएव श्रीविष्णुसहस्रनाम स्तोत्रमें उनके अवतारसूचक नामोंका कथन इस प्रकार है—"सुवर्णवर्णो हेमांगो वरांगश्चन्दनांगदी संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिपरायणम्"॥ (महाभारतीय अनुशासनपर्व दानधर्मपर्वे विष्णुसहस्रनामस्तोत्रे, अध्याय १४९, श्लोक ९२ एवं ९५) इन नामोंका अर्थ पूर्णरूपेण श्रीगौराँगदेवमें संघटित होता है। निखिल शास्त्र पारावारीण विद्वत् शिरोमणि श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यजीने भी अपनी उक्तिमें इस अवतारका इस प्रकार वर्णन किया है। यथा—समयके प्रभावसे लुप्तप्राय निज भक्तियोगको पुनः प्रकाशित करनेके लिए जिन श्रीहरिने श्रीकृष्णचैतन्य नामसे अवतार धारण किया, उनके श्रीचरणारविन्दोंमें मेरा चित्तरूपी भ्रमर सदैव दृढ़तापूर्वक लीन होता रहे।

षट् सन्दर्भात्मक-श्रीभागवत-सन्दर्भे-प्रथमः तत्वसन्दर्भे श्रीबलदेवविद्याभूषण विरचिता टीका—

कृष्णेति। निमि नृपतिना पृष्ठः करभाजनो योगी सत्यादि युगावतारानुक्त्वाथ "कलावपि तथा शृण्वि" ति

तमवधाप्याह, कृष्णवर्णमिति सुमेधसो जनाकलावपि हरिं भजन्ति। कैरित्याह संकीर्तनप्रायैर्यज्ञैरर्चनैरिति। कीदृशं तमित्याह कृष्णो वर्णो रूपं यस्यान्तरिति शेषः। त्विषा कान्त्यात्वकृष्णं—शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः इति गर्गोक्तिपारिशेष्याद् विद्युद् गौरमित्यर्थः। अंगे—नित्यानन्दाद्वैतो उपांगानि—श्रीवासादयः अस्त्राणि—अविद्या-च्छेतृत्वाद् भगवन्नामानि, पार्षदा गदाधर गोविन्दादयस्तैः सहितमिति महाबलित्वं व्यज्यते। गर्गवाक्ये पीत इति प्राचीन तदपेक्षया अयमवतारः श्वेतवाराहकल्पगताष्टाविंश-मन्वन्तरीयकलौ बोध्यः। तत्रत्ये श्रीचैतन्य एवोक्तधर्मदर्शनात्। अन्येषु कलिषु क्वचित् श्यामत्वेन, क्वचित् शुकपत्राभत्वेन व्यक्तेरुक्ते। 'छन्नः कलौयदभव' इति 'शुक्ल रक्तस्तथा पीत' इति 'कलावपि तथा श्रुण्वि' ति च। ये विमृशान्ति ते सुमेधसः। छन्नत्वञ्च प्रेयसी त्विषावृतत्वं बोध्यम्।

निमिराजके द्वारा प्रश्न करनेपर श्रीकरभाजन नामके योगेश्वर सत्य, त्रेता, द्वापरयुगोंके युगावतारोंको कहकर सावधान करते हुए राजासे बोले कि—कलियुगावतारका वर्णन भी सुनो। सुबुद्धिमान जन कलियुगमें भी श्रीहरिका भजन करते हैं। प्रश्न—किन साधनों द्वारा भजन करते हैं? उत्तर—संकीर्तन प्राय यज्ञों द्वारा। प्रश्न—कैसे रूपवाले हरिका भजन करते हैं? उत्तर—कृष्णवर्ण है भीतरमें जिनके एवं बाहरकी कान्तिसे तो जो 'शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानी कृष्णतां गतः" इस प्रकारकी श्रीगर्गोक्तिके

पारिशेष्य प्रमाणसे बिजलीके समान गौरवर्णवाले हैं, उनका भजन करते हैं। जिनके अंग—श्रीनित्यानन्द एवं अद्वैताचार्यजी हैं। उपांग—श्रीवास पंडितादि हैं। अस्त्र—अविद्या रूप वनका उच्छेदन करनेमें परम समर्थ श्रीभगवन्नाम ही हैं। पार्षद—श्रीगदाधर पंडित एवं गोविन्दादि हैं। इन सबके सहयोगसे उनकी महती बलवत्ता प्रतीत होती है। श्रीगर्गाचार्यजीके वाक्योंमें "पीत" यह शब्द अन्य प्राचीन युगोंमें भी भगवानके पीतवर्ण विशिष्ट अवतारोंको ध्वन्ति करता है, परन्तु यह अवतार तो श्वेतवराह कल्पके अन्तर्गत वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें कलियुगमें जानना चाहिए। कारण उन्हीं श्रीचैतन्यमें पूर्वोक्त धर्म देखे जाते हैं। अन्य कलियुगावतारोंमें तो कहीं-कहीं श्यामता एवं शुकपक्षीका सा हरा वर्ण भी व्यक्त होता है, यह शास्त्रोंमें देखा जाता है और "छन्नः कलौ यदभव" इति, "शुक्लो रक्तस्तथा पीत" इति, "कलावपि तथा शृणु" इति—इन सब श्लोकोंके तात्पर्यका जो लोग हृदयंगम विचार करते हैं, वे ही सुमेधा जन कहे जाते हैं। इस अवतारमें "छन्नत्वं" श्रीराधिकाजीकी कान्तिसे आवृतत्व समझना चाहिए।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्॥
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥२९॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्॥
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्।
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥३०॥
(श्रीमद्भागवते ११।५।३३–३४)

श्रील विश्वनाथचक्रवर्तिकृत सारार्थदर्शिनी—

अयमवतारः कलियुगवर्तिनो जनान् प्रायः कृष्णरामयोर्भजन-मार्गमुपदिशत्यतस्तयोः स्तुतिनती आह द्वाभ्याम्। ध्येय ध्यातुमर्हं सदेति नात्र कालदेशनियम इति भावः। इन्द्रियकुटुम्बादिभिर्यः परिभवस्तिरस्कारस्तं हन्तीत्यननुसंहितं फलमभीष्टदोहमित्यनुसंहितं तीर्थास्पदमिति ध्यानमात्रेण गंगादिसर्वतीर्थ स्नानसिद्धेः। कलौ द्रव्यदेशक्रियादिजनितं दुर्वारमपावित्र्यमपि नाशंकनीयमिति भावः। तत्र सदाचारमाह—शिवविरिंचीति सुखसेव्यत्वमाह—शरण्यमिति। भक्तवात्सल्यमाह—भृत्यार्तिहमिति। न च भृत्यानां परिचर्यादिकमप्यपेक्षत इत्याह हे प्रणतपालेति। भृत्याभिमानवन्तं प्रणतिमात्रेणैवं पालयतीति भावः। भवाब्धिपोतमिति "त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धि" मिति ब्रह्माद्युक्तेर्भवाब्धिः कदा निस्तीर्ण इत्यपि त्वद् भृत्यो न जानातीति भावः। श्लेषेण तस्याप्यवतारस्याप्यनेनैव स्तुतिनती यथा हे महापुरुष, हे परमहंस, महामुनीन्द्र, शिवविरिञ्चनुतं आचार्यहरिदासाभ्यां स्तुतमन्यत् समानम्॥

अन्यै सुदुस्त्यजा या सुरेप्सिता राज्यलक्ष्मीस्तां त्यक्त्वा

यदिति य इत्यर्थः। अरण्यमगात् किं राज्यवैकल्यदर्शनेन न—धर्मिष्ठः आर्यस्य गुरोर्दशरथस्य वचसा अनेन पितृभक्तत्वमुक्तं प्रेयसीप्रेमवशत्वं चाह—दयितया सीतया ईप्सितं मायामृगं स्वर्णाकारं मृगं योन्वधावत् तस्य वन्दे। श्लेषपक्षे असुभ्यः प्राणेभ्योपि दुस्त्यजा च सुरैरपि ईप्सितं राज्यं स्वकान्तेन विराजमानत्वं यस्याः सा च या लक्ष्मीस्तां त्यक्त्वा यत् यः अरण्यमगात्। तत्र हेतुः—आर्यस्य विप्रस्य वचसा तव सर्वमपि गार्हस्थ्यसुखं ध्वस्तं भवत्विति यज्ञोपवीतत्रोटनपूर्वकं यत् शापवचस्तेन; धर्मिष्ठः धर्मवतां मध्ये अतिशयेन श्रेष्ठो विप्रवाक्यं मा अन्यथा भवत्विति कृतं शापं स्वीचकार इत्यर्थः। गत्वा किमकरोदित्यत आह—मायां कलत्रपुत्रवित्तादिरूपां मृग्यति अन्वेष्यतीति मायामृगः संसाराविष्टो जनस्तमन्वधावत्। कीदृशं दया अतिशयेनास्तीति दयी तस्य भावो दयिता तया हेतुना ईप्सितं स्वाभीप्सित-मालिङ्गनमिषेण स्वस्पर्शं दत्वा संसारब्धौ पतितमपि तं प्रेमाब्धौ पातयितुमिति निरुपाधि महाकारुण्यं द्योतितम्॥

—अन्य व्यक्तियोंके द्वारा कभी भी न त्यागने योग्य तथा देववृन्दोंके द्वारा अभिलषित राज्यलक्ष्मीका परित्याग कर तथा धर्मिष्ठ आर्य—पिता दशरथकी आज्ञाको शिरोधार्य कर जो वन गये। उक्त कथनसे पितृभक्तिका निरुपण किया है। प्रेयसीकी प्रेमवश्यता कह रहे हैं—(दयिता) सीताके द्वारा ईप्सित मायामृगके पीछे जिन्होंने अनुगमन किया, उनके चरणोंकी वन्दना करता हूँ।

श्लेषार्थ—

त्यक्त्वासु=असु=प्राणोंसे भी दुस्त्यज तथा देवताओं द्वारा भी अभिलषित राज्यको और अपने कान्तके संगमें सर्वदा विराजमान ऐसी जो विष्णुप्रिया रूप लक्ष्मी उसे भी त्यागकर जो (चैतन्य महाप्रभुजी) वनमें चले गये। वनगमनका हेतु—ब्राह्मणका वाक्य। ब्राह्मणका कौनसा वाक्य—ब्राह्मणने कहा था कि 'तुम्हारा गृहस्थ-सुख सब नष्ट हो जाय।' अतः यज्ञोपवीतको तोड़कर जो शाप-वचन था, वह कहीं मिथ्या न हो जाय—ऐसा विचारकर धर्मशीलोंके बीच अतिश्रेष्ठ श्रीचैतन्य महाप्रभुजी शाप अंगीकार कर वन चले गये। वहाँ जाकर क्या किया? कलत्र, पुत्र, वित्त आदि रूप मायाको ढूँढनेवाले मृग अर्थात् संसाराविष्टजनके पीछे दौड़कर गये (कृपा करनेके लिए)। कैसे हैं वे—दयितयेप्सित=दया अतिशय होनेसे वे दयी हैं। अतः दयालुताका भाव, उससे ईप्सित अर्थात् अपने आलिङ्गनके व्याजसे स्पर्श-सुख देकर संसाररूपी समुद्रमें गिरे हुए जनको प्रेमरूपी समुद्रमें अवतारण-समर्थकी मैं स्तुति करता हूँ। इस वर्णनसे उपाधिरहित, महाकारुण्यका द्योतन कराया गया है।

यह अवतार मनुष्यको 'कृष्णनाम'के भजन-मार्गका उपदेश देता है। अतः दो श्लोकोंसे स्तुतिका उपक्रम किया गया है। वह सर्वदा ध्यान योग्य है। उसके ध्यानके लिए न कालका नियम है, न देश आदिका—यह भाव

है। इन्द्रिय तथा कुटुम्ब आदिसे होनेवाले परिभवका वह विनाशकारी है। ध्यानमात्रसे ही गंगादि तीर्थोंके स्नानके पुण्यको देने वाला है। द्रव्य-देश-क्रिया आदिसे उत्पन्न होनेवाली अपवित्रताको भी वह तत्काल दूर कर देता है—यह भाव है। इससे सदाचार भी कहा जाता है-शिव, ब्रह्माके भी वह नमनीय है। उसकी सुसेव्यता कहते है—वह शरण्य है अर्थात् रक्षा करनेमें निपुण एवं समर्थ है। उसकी भक्तवत्सलता "भृत्यार्तिहं" पदसे कही जा रही है। वह भक्तोंकी परिचर्या आदिकी अपेक्षा नहीं करता। अतः उसे 'प्रणतपाल' कहा गया है। भृत्य अभिमानवालेको प्रणतिमात्रसे ही पालन करनेमें समर्थ है-यह भाव है। भवाब्धिपोतम्—ब्रह्माजीने कहा है कि आपके चरणकमलरूप नौकाका आश्रय लेनेसे भवसागर गोवत्सके पदके समान हो जाता है। भृत्यको यह भी मालूम नहीं होता कि भवसागरको उसने कब तैर कर पार कर लिया। श्लेष अलंकारके द्वारा इस श्लोकमें उस अवतरणका भी स्तवन किया गया है; यथा—हे महापुरुष, हे परमहंस, महामुनीन्द्र, शिव और ब्रह्मा अर्थात् शिवावतार अद्वैताचार्य और ब्रह्मावतार नामाचार्य हरिदास ठाकुरके द्वारा स्तुति किये गये हैं। शेष अर्थ समान ही घटित होगा।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरकी विवृत्ति—

पूर्व श्लोकमें—"सुमेधायुक्त पुरुष कलियुगमें संकीर्तन यज्ञके द्वारा अङ्ग, उपांग, अस्त्र और पार्षदोंसे युक्त तथा

'कृष्ण'—इन युगल वर्णोंके उच्चारणकारी कृष्ण अर्थात् पीत अंगकान्तिवाले श्रीगौरसुन्दरकी आराधना करते हैं"—इस विधानकी व्यवस्था दी गयी है। अब उन्हीं भगवान श्रीगौरसुन्दरके श्रीपदारविन्दोंकी इन दो श्लोकोंमें वन्दना करते हैं। श्रीमन्महाप्रभुको 'महापुरुष', 'पुरुषोत्तम' और 'वासुदेव' आदि नामोंसे सम्बोधन करते हुए श्रीशुकदेव मुनि कह रहे हैं—'मैं आपके श्रीचरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ।' कलियुगमें संकीर्तन-यज्ञके द्वारा भगवत्पूजनकी यही विधि है।

स्तुतिके माध्यमसे भगवानकी 'वन्दना' नवधाभक्तिके अन्तर्गत एक मुख्य अंग है। 'महान प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्त्तकः' इस उपनिषद-मंत्रमें श्रीचैतन्य महाप्रभुको ही लक्ष्य किये जानेसे यहाँ भी 'महापुरुष'-शब्दसे श्रीचैतन्य महाप्रभुको ही लक्ष्य करके उनके ही श्रीचरणारविन्दोंकी वन्दना करना श्लोकोंका अभिप्राय है। उनके श्रीचरणकमल कैसे हैं—निखिल ध्येय तत्वोंके ध्येय हैं, अपने ध्यान करनेवालोंके भव-बन्धन छेदक हैं, भक्तजनोंके सर्वाभीष्टपूरक हैं, तीर्थोंके परम सम्पद और आकर हैं, ब्रह्मा और गिरीश आदि देवताओंके द्वारा नित्य नमस्कृत हैं, स्थावरसे लेकर देवताओं तक सभी जीवोंके मूल आश्रय हैं, आश्रित भक्तोंके सभी प्रकारके क्लेशोंका ध्वंस करनेवाले हैं और भगवद्भजनकी अभिलाषा रखनेवालेंको भवसागर पार करनेमें नौका सदृश हैं। ऐसे वे श्रीगौरसुन्दर ही

आश्रितों–प्रणतजनोंके पालक महाप्रभु हैं।

श्रीगौरसुन्दरने श्रीमद्भागवतोक्त त्रिदण्डिभिक्षु द्वारा व्यक्त मुकुन्द–सेवन–व्रतका आदर्श प्रदर्शन करनेके लिए संन्यास ग्रहणकी लीला प्रकटित की है। स्वर्गलोकके निवासी देवगण जिस राज्यलक्ष्मीरूपा दुर्लभ विषय–भोगकी स्पृहाका त्याग करनेमें असमर्थ हैं, श्रीगौरसुन्दरने श्रीकृष्णानुसंधानके उद्देश्यसे उस दुरतिक्रम्या भोगलिप्साको अति सहज ही त्याग देनेकी लीला द्वारा जगतको शिक्षा दी है।

इन्द्रिय–ग्राह्य ज्ञानकी असारता दिखलाकर उसे भी मलवत् त्यागकर श्रीमद्भागवत कथित अधोक्षज कृष्णकी सेवा ही जीवमात्रके लिए श्रेयस्कर है, इसकी शिक्षा देना ही श्रीगौरसुन्दरकी संन्यास–लीलाका गूढ़ तात्पर्य है।

श्रीगौरसुन्दर ही स्वयंरूप कृष्ण होनेके कारण वे ही अपनी दयिता—प्रियतमा श्रीमती राधिकाके एकमात्र अभीप्सित विषय–विग्रह कृष्णका अन्वेषण करनेके लिए दयिताकी भावकान्ति ग्रहण करके प्रधावित हुए थे। श्रीमती राधिकाकी उद्घूर्णा, चित्रजल्प आदि अधिरूढ़ महाभावके समस्त विकार–समूह उनमें प्रकाशित हुए थे। उन्होंने ह्लादिनीसार समवेत–विलास–वैचित्र्यमयी चिद् माया स्वरूपिणी श्रीमती राधिकाकी भावकान्ति ग्रहण करके, उस भावकान्ति द्वारा श्रीमतीके अन्वेषणकारी विषय–विग्रहके अनुसंधानमें निरत होनेकी लीलाका प्रदर्शन किया है। स्वयं विषय–विग्रह होकर भी आश्रयविग्रहके भावानुरूप भजन प्रणालीका

स्वयं आस्वादन करने तथा तदनुग भजनरत, श्रद्धालु जीवोंको भी वैसी भजन रीतिकी शिक्षा देनेके लिए उन्होंने ऐसी लीलाका अविष्कार किया है।

अद्वयज्ञान ब्रजेद्रनन्दनके आस्वादक और आस्वाद्यकी लीलाका तात्पर्य श्रीगौरलीलामें ही प्रकटित है। वे युगावतार या नैमित्तिकावतार आदि अंशावतार नहीं, सर्व अवतारोंके मूल स्वयं अवतारी कृष्ण ही हैं।

चिन्मयी माया श्रीमती वृषभानुनन्दिनी जिनका अनुसंधान करती हैं, उन परमप्रिय परतत्त्वके अनुसंधानके माध्यमसे श्रीगौरकृष्णकी अनुधावन लीला है। यह उनकी औदार्य लीला है।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥३१॥

(श्रीमद्भगवद् गीतायाम् ४।८)

युगावतारकी प्रामाणिकतामें अर्जुनके प्रति भगवान श्रीकृष्णचन्द्रका कथन भी इस प्रकार है कि—साधुओंकी रक्षाके लिए, दुष्टोंके विनाशके लिए एवं धर्मकी संस्थापनाके लिए युग-युगमें मैं अवतार लेता हूँ। तात्पर्य यह है कि प्रारंभमें ही कलिकालके अकाण्डताण्डव नृत्यसे पाखण्डपरायण गौड़देशके साधुजन जब भक्तिप्रधान परम धर्मकी हानिसे महान् दुःखित होने लगे और दुष्टोंका बोलबाला देख अद्वैताचार्य प्रभृति साधुओंकी करुण पुकारको सुनकर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रको गौरांग रूपमें श्रीमायापुर-नवद्वीपमें

अवतार लेना पड़ा। इस अवतारमें एक विशेषता यह और है कि अन्य अवतारोंकी भाँति आयुध विशेष धारण न करके केवल निज हरिनामास्त्रसे ही दुष्टोंका विनाश, साधुओंकी रक्षा, एवं परम धर्म अर्थात् **"स वै पुंसां परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे। अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति"** (भा० १।२।६) ऐसे कहे गये प्रेमलक्षणा भक्तिरूप धर्मकी संस्थापना भी अनायास कर दिखाई।

अहमेव द्विजश्रेष्ठो नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः।
भगवत्भक्तरूपेण लोकं रक्षामि सर्वदा॥३२॥

(आदि पुराणे एवं बृहन्नारदीय पुराणे)

भगवान् कहते हैं कि—मैं ही नित्य प्रच्छन्नविग्रह ब्राह्मण-श्रेष्ठ होकर भगवद्भक्त रूपसे निज भक्तजनोंकी सदा रक्षा करता हूँ। यह सब श्रीगौरांगदेवमें ही संघटित होता है।

कलिना दह्यमानानामुद्धाराय तनूभृताम।
जन्म प्रथमसंध्यायां भविष्यति द्विजालये॥३३॥

(कूर्मपुराणे)

कलिना दह्यमानानां परित्राणाय तनूभृताम्।
जन्म प्रथमसन्ध्यायां करिष्यामि द्विजातिषु॥३४॥

(गरुड़पुराणे)

कलिरूप दावानलसे जलते हुए भक्तोंके उद्धारके लिए कलिकी प्रथम सन्ध्यामें भूतलपर ब्राह्मणोंके कुलमें अवतीर्ण होऊँगा।

अहं पूर्णो भविष्यामि युगसन्धौ विशेषतः।
मायापुरे नवद्वीपे भविष्यामि शचीसुतः॥३५॥
कलेः प्रथमसन्ध्यायां लक्ष्मीकान्तो भविष्यति।
दारुब्रह्मसमीपस्थः संन्यासी गौरविग्रहः॥३६॥
यद् गोपीकुचकुंभसंभ्रमभरारंभेण संवर्धितं
यद्वा गोपकुमारसारकलया रंगेसुभंगीकृतम्।
यद् वृन्दावनकानने प्रविलसच्छ्रीदामादिभि
स्तत्प्रेमप्रकटं चकार भगवान् चैतन्यरूपः प्रभुः॥३७॥
यो रेमे सहवल्लवी रमयते वृन्दावनेऽहर्निशं
यः कंसं निजघान कौरवरणे यः पाण्डवानां सखा।
सोऽयं वैष्णवदण्डमण्डितभुजः संन्यासवेशः स्वयं
निःसन्देहमुपागतः क्षितितले चैतन्यरूपः प्रभुः॥३८॥
(गरुड़ पुराणे)

मैं कलियुगकी प्रथम सन्ध्यामें श्रीमायापुर–नवद्वीपमें शचीनन्दन रूपसे पूर्णावतार धारण करूँगा।

कलियुगकी प्रथम सन्ध्यामें षडैश्वर्य परिपूर्ण लक्ष्मीकान्त भगवान ही दारुब्रह्म श्रीजगन्नाथजीके समीप श्रीगौरांग–रूप धारणकर संन्यास वेषमें अवतीर्ण होंगे। गरुड़पुराणकी यह उक्ति भी श्रीकृष्णचैतन्यदेवका बोध कराती है, कारण आपकी ही प्रथम पत्नीका नाम लक्ष्मी था। पुरुषोत्तम क्षेत्रके समीप आपका ही अवस्थान प्रसिद्ध है।

श्रीकृष्णावतारमें जिस विशुद्ध प्रेमकी वृद्धि गोपियोंके साथ रासलीला रचकर की थी एवं श्रीवृन्दावनमें क्रीड़ापरायण

सुदामा, श्रीदामा, मधुमंगल, स्तोककृष्ण, दाम प्रभृति सखाओंके सहित गोपकुमारलीलाका सारस्वरूप प्रकट करते हुए मल्ललीला, आँखमिचौनी आदि क्रीड़ाके रंगस्थलमें जिस प्रेमको सुव्यक्त कर दिखाया था, उसी विशुद्ध प्रेमलक्षणा भक्तिमय प्रेमको प्रभुने श्रीकृष्णचैतन्यरूप धारणकर नवद्वीप-पुरुषोत्तम आदि क्षेत्रोंमें प्रकट कर दिखाया था।

जिन प्रभुने श्रीकृष्णचन्द्ररूपमें श्रीवृन्दावन धाममें गोपियोंके साथ रासलीला करते हुए अनेकों क्रीड़ाएँ कीं एवं जिन्होंने कंसको मार डाला, कौरवोंके संग्राममें जो पांडवोंके सखा बनकर पार्थसारथि कहलाये, निःसन्देह वे अघटित-घटना-पटीयान् स्वयं प्रभु संन्यास वेष धारणकर वेणु-दण्डसे भुज सुशोभित कर पृथ्वीतलमें श्रीकृष्णचैतन्यरूपसे पधारे।

नामसिद्धान्तसंपत्ति प्रकाशनपरायणः।
क्वचित् श्रीकृष्णचैतन्यनामा लोके भविष्यति॥३९॥

(देवीपुराणे उमामहेश्वर-संवादे)

श्रीमहादेवजी पार्वतीसे बोले—निखिल कोटिब्रह्माण्ड नायक प्रभु ही क्वचित् (कहीं तात्पर्य) श्रीनवद्वीपमें प्रकट होकर भगवन्नामके सिद्धान्तकी संपत्तिका प्रकाश करनेके लिए श्रीकृष्णचैतन्य नामसे लोकमें प्रसिद्ध होंगे।

सत्ये दैत्यकुलाधिनाशसमये सिंहोर्ध्वमर्त्याकृति-
स्त्रेतायां दशकन्धरं परिभवन् रामेति नामाकृतिः।
गोपालान् परिपालयन् व्रजपुरे भारं हरन् द्वापरे
गौराँगः प्रियकीर्तनः कलियुगे चैतन्यनामा प्रभुः॥४०॥

(नृसिंहपुराणे)

सत्ययुगमें जो प्रभु हिरण्यकशिपुका विनाश करनेके समय नृसिंहाकृतिसे अवतीर्ण हुए, त्रेतायुगमें रावणका तिरस्कार करते हुए परममनोहर राम नामक श्रीविग्रहसे प्रकट हुए और द्वापरमें पृथ्वीका भार उतारनेके लिए ग्वालबालोंकी रक्षा करते हुए त्रिभुवन मोहन रूपसे श्रीव्रजधाममें विराजे, वे ही प्रभु कलियुगमें संकीर्तनप्रिय श्रीगौराँगदेव श्रीकृष्णचैतन्य नामसे विख्यात होंगे।

यत्र योगेश्वरः साक्षाद् योगिचिन्त्यो जनार्दनः।
चैतन्यवपुरास्ते वै सान्द्रानन्दात्मकः प्रभुः ॥४१॥
कलेः प्रथमसन्ध्यायां गौरांगोऽहं महीतले।
भागीरथीतटे रम्ये भविष्यामि शचीसुतः ॥४२॥

(पद्मपुराणे उत्तरखंडे वैकुण्ठवर्णने)

जिस दिव्यातिदिव्य वैकुण्ठमें योगीजनोंके चिन्तनीय, सान्द्रानन्दात्मक, जनार्दन भगवान् योगेश्वर चैतन्यविग्रहसे विराजमान रहते हैं, वे वैकुण्ठाधिपति कहते हैं कि—

मैं कलिकी प्रथम सन्ध्यामें परम रमणीय भागीरथीके तीरपर भूतलमें श्रीशचीमातासे प्राकट्य धारणकर श्रीगौरांग रूपसे अवतीर्ण होऊँगा।

अहमेव कलौ विप्र नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः।
भगवद् भक्तरूपेण लोकान् रक्षामि सर्वदा ॥४३॥
दिविजा भुवि जायध्वं जायध्वं भक्तिरूपिणः।
कलौ संकीर्तनारंभे भविष्यामि शचीसुतः ॥४४॥

(बृहन्नारदीयपुराणे)

हे विप्रवर! कलियुगमें मैं अपने स्वाभाविक श्यामल विग्रहको श्रीमती राधिकाजीके भाव एवं कान्तिसे आच्छादित कर भक्तरूपसे श्रीहरिनामरूप परमास्त्र द्वारा भक्तजनोंकी सदा सर्वदा रक्षा करता हूँ। अतः हे देवताओं! तुम सबसे भी मेरा यही कहना है कि तुम सभी अब पृथ्वीलोकमें भक्तरूपसे प्रकट हो जाओ, कारण कि कलियुगमें नामसंकीर्तनारंभके समय मैं भी श्रीशचीपुत्ररूपसे प्रकट होऊँगा।

कलेः प्रथमसन्ध्यायां गौरांगोऽहं महीतले।
भागीरथीतटे भूम्नि भविष्यामि सनातनः॥४५॥

(ब्रह्मपुराणे)

मैं सनातन ब्रह्म ही कलिकी प्रथम सन्ध्यामें विस्तृत भागीरथीके तटपर श्रीगौरांगरूपसे प्रकट होकर भूतलमें विख्यात होऊँगा।

आनन्दाश्रु कलारोमहर्षपूर्णं तपोधन।
सर्वे मामेव द्रक्ष्यन्ति कलौ संन्यासिरूपिणम्॥४६॥

(भविष्यपुराणे)

हे तपोधन! कलियुगमें सब भक्तजन मुझको आनन्दाश्रु कलाओंसे रोमहर्षसे परिपूर्ण वपु संन्यासवेषमें देखेंगे। तात्पर्य—ये सब प्रेमके अष्टसात्त्विक विकार संन्यासीरूपधारी श्रीगौरहरिमें अनुभूत हुए हैं, अतः उसी अवतारका संकेत है।

प्रशान्तात्मा लम्बकण्ठश्च गौरांगश्चः सुरावृतः॥४७॥

(अग्निपुराणे)

प्रशान्तात्मा, लम्बे कण्ठवाले और देवताओंसे वेष्टित गौराङ्गरूपमें आविर्भूत होंगे।

सुपूजितः सदा गौरः कृष्णो वा वेदविद् द्विजः ॥४८॥

(सौरपुराणे)

वेदज्ञ ब्राह्मणके रूपमें अवतीर्ण गौर अर्थात् कृष्ण सदा सर्वदा पूजित होते हैं।

मण्डो गौरः सुदीर्घाङ्गस्त्रिस्त्रोतस्तीरसंभवः।
दयालुः कीर्तनग्राही भविष्यामि कलौ युगे ॥४९॥

(मत्स्यपुराणे)

कलौ संकीर्तनारंभे भविष्यामि शचीसुतः।
स्वर्णद्युतिं समास्थाय नवद्वीपे जनाश्रये ॥
शुद्धो गौरः सुदीर्घाङ्गो गङ्गातीर–समुद्भवः।
दयालुः कीर्तनग्राही भविष्यामि कलौ युगे ॥५०॥

(वायुपुराणे)

कलिकालमें संकीर्त्तनका प्रारम्भ करनेके लिए नवद्वीप नामक पुरीमें सुवर्ण कान्ति ग्रहणकर शचीपुत्ररूपमें प्रकट होऊँगा।

हे देवताओं! कलियुगमें मैं गंगाजीके तीरस्थ श्रीमायापुर नवद्वीपमें प्रकट होकर सर्व–साधारण पापी–तापी जीवोंको नाम संकीर्त्तनकी परिपाटी सिखाऊँगा। उस समयके जीवोंकी दृष्टिमें मैं मुण्डितकेश, गौरवर्णविशिष्ट, आजानुलंबित भुजादिसे दीर्घाङ्ग एवं पात्रापात्र–विचाराधिकार भूमिकासे परे उच्चकोटिके परम दयालुरूपसे अनुभूत होऊँगा।

गोलोकं च परित्यज्य लोकानां त्राणकारणात्।
कलौ गौरांगरूपेण लीलालावण्यविग्रहः॥५१॥

(मार्कण्डेयपुराणे)

मैं अनेक लीलाओंके सम्पादनके लिए परम मनोहर विग्रह धारण करनेवाला होकर भी कलियुगमें भक्तजनोंकी रक्षाके हेतु गोलोकका त्यागकर श्रीगौरांगरूपसे अवतीर्ण होऊँगा।

अहमेव द्विजश्रेष्ठो लीलाप्राचुर्यविग्रहः।
भगवद्भक्तरूपेण लोकान् रक्षामि सर्वदा॥५२॥

(वराहपुराणे)

लीलामात्रसे अनेक रूप धारण करनेवाला मैं भी कलिकालमें ब्राह्मणश्रेष्ठ बनकर भगवद्भक्तरूपसे कलि-दावानालसे भक्तजनोंकी सदैव रक्षा करता हूँ।

कलिघोरतमश्छन्नान् सर्वानाचारवर्जितान्।
शचीगर्भे च संभूय तारयिष्यामि नारद॥५३॥

(वामनपुराणे)

हे नारद! कलिकालके अज्ञानरूपी घोर अन्धकारसे आच्छन्न, आचार-विचार वर्जित सभी जनोंको मैं श्रीशचीदेवीसे प्रकट होकर संसारसागरसे पार कर दूँगा।

अहमेव क्वचिद् ब्रह्मन् संन्यासाश्रममाश्रितः।
हरिभक्तिं ग्राहयामि कलौ पापहतान्नरान्॥५४॥

(उपपुराणे)

(चैतन्यचरितामृते १-३-८२)

श्रीकृष्ण व्यासदेवसे कहते हैं—हे व्यासदेव! पापपीड़ित जनोंको मैं (स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण) ही क्वचिद् "गुप्त रूपेणावतीर्य" इति क्वचिदर्थः—अर्थात् कहीं गुप्तरूपसे अवतार धारणकर संन्यास आश्रमका अवलंबन कर कलियुगमें हरिभक्तिको ग्रहण करता हूँ।

पौर्णमास्यां फाल्गुनस्य फाल्गुनीऋक्षयोगतः।
भविष्ये गौररूपेण शचीगर्भे पुरन्दरात्॥५५॥
स्वर्णदीतीरमास्थाय नवद्वीपे जनाश्रये।
तत्र द्विजकुलं प्राप्तो भविष्यामि जनालये॥५६॥
भक्तियोगप्रदानाय लोकस्यानुग्रहाय च।
संन्यासरूपमास्थाय कृषणचैतन्यनामधृक्॥५७॥
येन लोकस्य निस्तारस्तत् कुरुध्वं ममाज्ञया।
धरित्री भविता चाऽभीर्मयैव द्विजदेहिना॥५८॥

(वायुपुराणे)

भगवान स्वयं कहते हैं—हे देवताओं! उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रके योगसे युक्त फाल्गुन मासकी पूर्णिमाके दिन द्विजेन्द्र पण्डित श्रीजगन्नाथ (मिश्र पुरन्दर) द्वारा श्रीशचीमाताके गर्भसे गौराङ्गरूपसे अवतीर्ण होऊँगा।

गङ्गा तटका आश्रय लेकर विराजमान भक्तजनोंका जो प्रधान स्थान नवद्वीप है, वहाँ पर मैं उत्तम ब्राह्मण कुलका आश्रय लेकर भक्तोंके स्थानमें आविर्भूत होऊँगा।

उस समय भक्तियोगका प्रदान करनेके लिए, जनमात्रको अनुगृहीत करनेके लिए संन्यासवेष धारण कर श्रीकृष्णचैतन्य

नामसे विख्यात होऊँगा।

अतः जिस प्रकार संसारका निस्तार हो उसी प्रकार तुम सब मेरी आज्ञाका पालन करो। ब्राह्मण शरीरधारी मेरे द्वारा ही पृथ्वी भयरहित हो जायेगी।

निःस्वाध्यायवषट्कारे स्वधास्वाहाविवर्जिते।
ततः प्राविरसौ विप्रः क्वचिल्लोके भविष्यति॥५९॥

(विष्णुपुराणे)

जिस समय संसार वेदशास्त्रोंके स्वाध्यायसे रहित, यज्ञ यागादिमें प्रयुज्यमान वषट्कार, स्वधा, स्वाहादिसे वर्जित हो जायेगा, तब कहीं यही पुराण–पुरुषोत्तम प्रकटित होंगे। "छन्नः कलौ यदभवः" की भाँति यहाँ पर भी छन्नावतारकी प्रतीतिके लिए कई श्लोकोंमें क्वचित् शब्द आता है, यह जानना।

स्वर्णदीनीरमाश्रित्य नवद्वीपे द्विजालये।
संप्रदातुं भक्तियोगं लोकस्यानुग्रहाय च॥६०॥
य एव भगवान् कृष्णो राधिकाप्राणवल्लभः।
सृष्ट्यादौ स जगन्नाथो गौर आसीन्महेश्वरि॥६१॥
अवतीर्णो भविष्यामि कलौ निजगुणैः सह।
शचीगर्भे नवद्वीपे स्वर्धुनीपरिवारिते॥६२॥
अप्रकाश्यमिदं गुह्यं न प्रकाश्यं बहिर्मुखे।
भक्तवतारं भक्ताख्यं भक्तं भक्तिप्रदं स्वयम्॥६३॥
मन्मायामोहिताः केचिन्न ज्ञास्यन्ति बहिर्मुखाः।
ज्ञास्यन्ति मद्भक्तियुक्ताः साधवो न्यासिनोऽमलाः॥६४॥

कृष्णवतारकाले याः स्त्रियो ये पुरुषाः प्रियाः।
कलौ तेऽवतरिष्यिन्ति श्रीदामसुबलादयः॥६५॥
चतुःषष्टिर्महान्तस्ते गोपा द्वादश बालकाः।
धर्मसंस्थापनार्थाय विहरिष्यामि तैरहम्॥६६॥
काले नष्टं भक्तिपथं स्थापयिष्याम्यहं पुनः।
गच्छन्तु भुवि ते पुत्राः जायन्तां भक्तरूपिणः।
धर्मसंस्थापनं काले कुर्वन्तु ते ममाज्ञया॥६७॥
कृष्णश्चैतन्यगौरांगौ गौरचन्द्रः शचीसुतः।
प्रभुगौरो गौरहरिर्नामानि भक्तिदानि मे॥६८॥
(अनन्त संहितायाम्)

श्रीशंकरजी पार्वतीसे बोले—हे महेश्वरि! सृष्टिके आदिमें जिन प्रभुका नाम श्रीजगन्नाथ था और जो द्वापरमें श्रीराधिकाप्राणवल्लभ स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्ररूपमें अवतीर्ण हुए थे, वे ही पुराण पुरुषोत्तम प्रभु प्रेमलक्षणा भक्तियोगका प्रदान करने एवं संसारका कल्याण करनेके लिए गंगा–तीरस्थ नवद्वीप धाममें किसी विशिष्ट ब्राहणके घर गौरांग रूपसे अवतीर्ण होंगे। वे ही प्रभु ब्रह्माजीके प्रति कहते हैं कि—हे ब्रह्मन्! मैं कलियुगमें गंगाजीसे घिरे हुए नवद्वीपमें अपने पार्षदों सहित शचीमाताके हृदयप्रांगणमें अवतीर्ण होऊँगा। यह रहस्य अप्रकाशनीय है। अतः किसी बहिर्मुख जनके सामने नहीं प्रकाशित करना। भक्तसदृश नामवाले, अनर्पितचरी भक्तिके देनेवाले, स्वयं भक्तरूपसे परिदृश्यमान होनेवाले, मेरे इस भक्तावतारको मायासे

मोहित कुछ बहिर्मुख लोक नहीं जान सकेंगे। किन्तु मेरी भक्तिसे युक्त, सर्वस्व मेरे लिए अर्पण करने वाले निर्मल साधुजन मुझे भलीभाँति जान लेंगे। श्रीकृष्णावतारके समयमें जो मेरे परम प्रिय नर–नारी–आबाल वृद्धजन हैं, वे सभी श्रीदाम सुबल आदि कलियुगमें मेरे साथ अवतीर्ण होंगे। वे ही सब जन कुछ चौषठ महान्त और द्वादश गोपालोंके नामसे विख्यात होंगे। मैं उन सबके साथ ही विहार करूँगा। धर्मकी संस्थापनाके लिए कलियुगमें नष्टप्राय भक्तिमार्गकी पुनः सुदृढ़ संस्थापना करूँगा। अतः तुम्हारे सनकादिक चारों पुत्र भी भूमिपर चले जाय और यहाँ भी मेरी आज्ञासे भक्तरूपमें अवतीर्ण होकर समयानुसार धर्मकी स्थापना करें। कृष्ण, चैतन्य, गौरांग, गौरचन्द्र, शचीसुत, प्रभु, गौर, गौरहरि इत्यादि ये मेरे सब नाम जापकोंको भक्ति देनेवाले हैं।

द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पाञ्चरात्रैस्तु केवलैः।
कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः॥६९॥

(श्रीमध्वाचार्यकृत मुण्डकोपनिषद्भाष्ये नारायणसंहितावचनम्)

द्वापरयुगके जन तो केवल पञ्चरात्रोक्त विधिके अनुसार भगवानका पूजन करते हैं, परन्तु कलियुगमें तो केवल हरिनाम मात्रसे ही भगवान्‌का पूजन तत्कालीन जन करते हैं।

एवमङ्ग विधिं कृत्वा मंत्री ध्यायेद्यथाच्युतम।
कलायकुसुमश्यामं द्रुतहेमनिभं तु वा॥७०॥

(तंत्रे च प्रोक्तम्)

कोई ऋषि ध्याताजनके लिए ध्यान–विधिका वर्णन करते हुए कहते हैं कि—हे प्रिय भक्त! विधिपूर्वक गुरुदेवसे मंत्र प्राप्त करनेपर मंत्र जापक जनको प्रभुके कलायकुसुमके समान श्यामरूपका ध्यान करना चाहिए अथवा पिघले हुए सुवर्णके समान रूपका ध्यान करना चाहिये। तात्पर्य—अलसीके पुष्पके समान रूपवाले तो श्रीरामकृष्णादि रूप हैं, परन्तु द्रुतहेमसदृश तो श्रीगौरांगदेव ही हैं। अतः उनका भी ध्यान यथाधिकार वर्णित है।

सन्धौ कृष्णो विभुः पश्चाद् देवक्यां वसदेवतः।
कलौ पुरन्दरात् शच्यां गौररूपो विभुः स्मृतः॥७१॥
अवतारमिमं कृत्वा जीवनिस्तारहेतुना।
कलौ मायापुरीं गत्वा भविष्यामि शचीसुतः॥७२॥

(ऊर्ध्वाम्नायतंत्रे)

निज भावुक भक्तोंकी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सर्वव्यापक सर्वान्तरात्मा भगवान् कृष्ण द्वापरकी पश्चिम सन्धिमें तो श्रीवसुदेवजी द्वारा श्रीदेवकीमें प्रकट हुए। तत्पश्चात् वे ही प्रभु कलिकी पूर्व–सन्ध्यामें पंडित श्रीजगन्नाथ मिश्र द्वारा श्रीशचीदेवीमें प्रकटहो श्रीगौरांगरूपसे कह जाते हैं। वे ही प्रभु स्वयं कहते हैं कि कलियुगमें इस “गौर” अवतारको लेकर जीवोंके कल्याणके लिए मायापुरीमें जाकर श्रीशचीसुतरूपसे प्रकट होऊँगा।

क्वचित् सापि कृष्णमाह शृणु मद्वचनं प्रिय।
भवता च सहैकात्म्यमिच्छामि भवितुं प्रभो॥७३॥

मम भावान्वितं रूपं हृदयाह्लादकारणम्।
परस्पराङ्गमध्यस्थं क्रीडाकौतुकमङ्गलम्॥७४॥
परस्परस्वभावाढ्यं रूपमेकं प्रदशय।
श्रुत्वा तु प्रेयसीवाक्यं परमप्रीतिसूचकम्॥७५॥
स्वेच्छयासीद् यथा पूर्वमुत्साहेन जगद्गुरुः।
प्रेमालिङ्गनयोगेन ह्यचिन्त्यशक्तियोगतः॥७६॥
राधाभावकान्तियुक्तां मूर्तिमेकां प्रकाशयन।
स्वप्ने तु दर्शयामास राधिकायै स्वयं प्रभुः॥७७॥

(कपिलतंत्रे)

एक दिन श्रीराधिकाजी श्रीकृष्णचन्द्रसे बोलीं—हे प्राणप्रिय प्रभो! मैं आपके श्रीविग्रहके साथ एकीभाव होना चाहती हूँ। अतः प्रभो! वह दोनोंका संमिश्रित ऐसा रूप दिखाओ जो परस्पराङ्ग मध्यस्थ हो, क्रीड़ा कौतुकका मंगलदायक हो, परस्पर दोनोंके भावसे युक्त हो। प्रियाजीकी परम प्रीतिसूचक ऐसी वाणी सुनकर जगद्गुरु भगवान श्रीकृष्णने उत्साहपूर्वक अपनी इच्छाके अनुसार अचिन्त्य शक्तिके द्वारा प्रेमालिङ्गन योगसे श्रीराधाजीके भाव एवं कान्तिसे युक्त एक ही मूर्तिको प्रकाशितकर श्रीराधिकाजीको स्वप्नमें दर्शन कराया। स्वप्नमें प्रथम दर्शन करानेका तात्पर्य यह है कि—यदि आपको यह राधाभावकान्ति मिलित वपु अच्छा लगे तो मैं भक्तोंके सामने प्रकट करूँ।

ब्रह्मण्यः सर्वधर्मज्ञः शान्तो दान्तो गतक्लमः।
श्रीनिवासः सदानन्दी विश्वमूर्तिर्महाप्रभुः॥७८॥

(संमोहनतंत्रे)

ये सब नाम श्रीचैतन्य महाप्रभुमें सांगोपांग संघटित होते हैं। यथा—कुष्ठरोगसे पीड़ित ब्राह्मणको आलिङ्गन प्रदान मात्रसे सुवर्णमय देह बना देनेसे एवं यज्ञोपवीत तोड़कर शाप देनेवाले विप्रका शाप सहर्ष स्वीकार कर दिखानेसे ब्रह्मण्यदेव प्रसिद्ध ही हैं। पंडित श्रीनिवास एवं सदानन्द आपके पार्षद प्रसिद्ध ही हैं, अतः आपका नाम श्रीनिवास और सदानन्दी है। विश्वरूप आपके अग्रज होनेसे विश्वमूर्ति भी आपका नाम है। महाप्रभु शब्द तो यौगिक होने पर भी आपमें ही प्राय रूढ़ है। सर्वधर्मज्ञ आदि नाम तो स्पष्ट ही आपमें चरितार्थ हैं।

अहं पूर्णो भविष्यामि युगसन्धौ विशेषतः।
मायापुरे नवद्वीपे वारमेकं शचीसुतः ॥७९॥

(श्रीकृष्णयामले श्रीगोकुलनाथवचनम्)

मैं श्रीमायापुर–नवद्वीपधाममें कलियुगकी प्रथम सन्धिमें एकबार परिपूर्णरूपसे प्रकट होऊँगा। यहाँ पर "पूर्णः" 'वारमेकं' का यह तात्पर्य है—जिस द्वापरकी सन्धिमें भगवान् कृष्णचन्द्रका परिपूर्णतम अवतार होता है, उसी कलियुगकी प्रथम सन्धिमें श्रीगौरांगदेवका परिपूर्णावतार होता है।

अथवाहं धराधाम्नि भूत्वा मद्भक्तरूपधृक्।
मायायां च भविष्यामि कलौ संकीर्तनागमे ॥८०॥

(ब्रह्मयामले)

कलिकालमें संकीर्तनके आरम्भके समय मैं भूतल पर

अपने प्रिय भक्तोंका–सा वेष बनाकर श्रीमायापुरमें अवतीर्ण होऊँगा।

गौरांगं गौरदीप्तांगं पठेत् स्तोत्रं कृताञ्जलिः।
नन्दगोपसुतं चैव नमस्यामि गदाग्रजम् ॥८१॥
(ब्रह्मयामले चैतन्यकल्पे चैतन्यस्तवे)

सुवर्णमय देदीप्यमान गौर अंगवाले श्रीगौरांगदेवके स्तोत्रका पाठ हाथ जोड़कर करना चाहिए। मैं तो श्रीनन्दजूके लाला गदाग्रजको भी प्रतिदिन नमस्कार करता हूँ।

कलौ प्रथमसन्ध्यायां हरिनामप्रदायकः।
भविष्यति नवद्वीपे शचीगर्भे जनार्दनः ॥८२॥
जीवनिस्तारणार्थाय नामविस्तारणाय च।
यो हि कृष्णः स चैतन्यो मनसा भाति सर्वदा ॥८३॥
(ब्रह्मयामले उमामहेश्वर संवादे)

श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे बोले—कलिकी प्रथम सन्ध्यामें श्रीहरिनामप्रदाता श्रीजनार्दन भगवान् पतित जीवोंका उद्धार करनेके लिए एवं निज श्रीहरिनामका संचार करनेके लिए श्रीनवद्वीपधाममें श्रीशचीमाताके गर्भसे प्रकट होंगे। हे पार्वती! मुझे तो अपने मनसे जो श्रीकृष्ण हैं, वे ही श्रीकृष्णचैतन्य हैं, ऐसी सदा प्रतीति होती रहती है।

भविष्यामि च चैतन्यः कलौ संकीर्तनागमे।
हरिनामप्रदानेन लोकान्निस्तारयाम्यहम् ॥८४॥
(ब्रह्मयामले श्रीकृष्णवाक्यम्)

श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं कहते हैं कि—मैं कलियुगमें संकीर्तनके आरम्भ कालमें श्रीचैतन्यरूपसे प्रकट होऊँगा। इस अवतारमें श्रीहरिनामका दान कर सर्वसाधारण जीवोंका उद्धार कर दूँगा। इस श्लोकमें 'निस्तारयामि' यह वर्तमान कालकी क्रिया 'वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद्धा' इस सूत्रसे श्रीकृष्णावतारानंतर भावी समीपवर्ती अवतारकी सूचिका भविष्यदर्थमें है।

गङ्गायाः दक्षिणे भागे नवद्वीपे मनोरमे।
कलिपाप–विनाशाय शचीगर्भे सनातनि॥८५॥
जनिष्यति प्रिये मिश्रपु रन्दरगृहे स्वयम्।
फाल्गुने पौर्णमास्याञ्च निशायां गौरविग्रहः॥८६॥
(विश्वसार तंत्रे)

हे प्रिये! गंगाके दक्षिण भागमें मनोरम नवद्वीप धाममें भगवान श्रीकृष्ण कलियुगके पापोंका विनाश करनेके लिए फाल्गुनी पूर्णिमाकी रातमें मिश्रपुरन्दर—जगन्नाथ मिश्रके गृहमें श्रीशचीदेवीके गर्भसे गौर रूपमें आर्विभूत होंगे।

जम्बुद्वीपे कलौ घोरे मायापुरे द्विजालये।
जनित्वा पार्षदैः सार्द्धंकीर्तनं प्रकटिष्यति॥८७॥
(कपिल तंत्रे)

घोर कलियुगमें जम्बुद्वीपके अन्तर्गत मायापुरमें उत्तम ब्राह्मणके गृहमें जन्म ग्रहण करके भगवान अपने पार्षदोंके साथ कीर्तन करेंगे।

ततः काले च संप्राप्ते कलौ कोऽपि महानिधिः।
हरिनाम प्रकाशाय गंगातीरे जनिष्यति ॥८८॥
(कुलार्णव–तंत्रे)

अनन्तर कलियुगके प्रारम्भमें हरिनामका प्रचार करनेके लिए गंगातट पर कोई सम्पूर्ण सद्गुणोंकी निधि जन्म ग्रहण करेंगे।

भक्तियोगप्रकाशाय लोकस्यानुग्रहाय च।
संन्यासाश्रममाश्रित्य कृष्णचैतन्यरूपधृक् ॥८९॥
(जैमिनी भारते)

भक्तियोगका प्रकाश करनेके लिए तथा जीवोंपर दया करनेके लिए मैं संन्यास आश्रम ग्रहण करके कृष्णचैतन्य नाम धारण करने वाला होऊँगा।

गौरी श्रीराधिका देवी हरिः कृष्णः प्रकीर्तितः।
एकत्वाच्च तयोः साक्षादिति गौरहरिं विदुः ॥९०॥
(अनन्त संहितायाम्)

क्योंकि श्रीमती राधिका देवी ही 'गौरी' तथा कृष्ण ही 'हरि' नामसे प्रसिद्ध हैं, इसलिए उन दोनोंके एकताप्राप्त साक्षात् विग्रह 'गौरहरि' कहलाये।

नवद्वीपे च स कृष्णः आदाय हृदये स्वयम्।
गजेन्द्रगमनां राधां सदा रमयते मुदा ॥९१॥
नवद्वीपे तु ताः सख्यो भक्तरूपधराः प्रिये।
एकाङ्गं श्रीगौरहरिं सेवन्ते सततं मुदा ॥९२॥

यः एव राधिकाकृष्णः स एव गौरविग्रहः।
यच्च वृन्दावनं देवि! नवद्वीपञ्च तत् शुभम्॥९३॥
वृन्दावने नवद्वीपे भेदबुद्धिश्च यो नरः।
तमेव राधिकाकृष्णे श्रीगौरांगे परात्मनिः॥९४॥
मच्छूलपातनिर्भिन्नदेहः सोऽपि नराधमः।
पच्यते नरके घोरे यावदाहूतसंप्लवम्॥९५॥
(अनन्त–संहितायाम्)

नवद्वीपमें भी वही कृष्ण स्वयं गजेन्द्रगामिनी श्रीराधिकाको वक्षस्थलमें धारण कर आनन्द दान कर रहे हैं। अहो शिवे! ललिता आदि जो-जो सखियाँ वृन्दावनमें अपना रूप धारण करके श्रीश्रीराधाकृष्णकी सेवा करती हैं, नवद्वीपमें वे सभी सखियाँ भक्तरूप धारण करके आनन्दपूर्वक राधाकृष्णमिलित तनु श्रीगौरसुन्दरकी आराधना करती हैं। हे देवि! श्रीराधाकृष्णकी युगल जोड़ीने ही गौररूप धारण किया है और जो वृन्दावनके नामसे प्रसिद्ध हैं, उन्हींको नव वृन्दावन—नवद्वीप जानों।

जो व्यक्ति वृन्दावन और नवद्वीपमें तथा राधाकृष्ण और परमात्म स्वरूप श्रीगौराङ्गदेवमें भेदबुद्धि करता है, वह नराधम मेरे शूल द्वारा छिन्न-भिन्न होकर प्रलय काल तक घोर नरककी यातना भोग करता है।

इति मत्वा कृपासिन्धुरंशेन कृपया हरिः।
प्रसन्नो भक्तरूपेण कलाववतरिष्यति॥९६॥

गौरांगो नादगंभीरः स्वानामामृतलालसः।
दयालुः कीर्तनग्राही भविष्यति शचीसुतः॥९७॥
मत्वा तन्मयमात्मानं पठन् द्वयक्षरमुच्चकैः।
गतत्रपो मदोन्मत्तगजवत् विहरिष्यति॥९८॥
भुवं प्राप्तेतु गोविन्दे चैतन्याख्या भविष्यति।
अंशेन तत्र यास्यन्ति तत्र तत्पूर्वपार्षदाः।
पृथक् पृथक् नामधेयाः प्रायः पुरुषमूर्तयः॥९९॥
(कृष्णयामले)

भावार्थ—देवताओंकी ऐसी प्रार्थना एवं श्रीराधिकाजीकी अपने साथ एकाकार होनेकी प्रार्थना मानकर कृपासिन्धु श्रीहरि प्रसन्न होकर अपने पार्षदों सहित कलियुगमें भक्तरूपसे अवतार लेंगे। उस समय आपका श्रीविग्रह गौरवर्णका होगा। नाद भी गंभीर होगा। स्वनामामृतपानकी लालसा प्रतिक्षण प्रकट होती रहेगी, अतः दयालु श्रीहरि शचीसुत होकर अपने भक्तोंके साथ संकीर्तन करते-कराते रहेंगे। नाम-नामीमें भेद न होनेके कारण अपनेको नाममय मानकर अपने दो अक्षरवाले 'हरि' नामको उच्च स्वरसे 'हरि बोल' 'हरि बोल' इस प्रकार लाज रहित हो पुकारते हुए मदमत्त हाथीकी भाँति निज भक्तगणोंमें विहार करेंगे। जिस समय पुराण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीगोविन्द भूमिपर अवतीर्ण होंगे, तब उनका नाम 'श्रीचैतन्यदेव' रूपसे प्रसिद्ध होगा और उनके साथ ही उनके पूर्व पार्षद भी अपने-अपने अंशसे पधारेंगे। उनके

नाम भी पूर्वकी अपेक्षा भिन्न-भिन्न ही होंगे। वे सभी प्रायः पुरुषाकार मूर्तिमें ही प्रकट होंगे।

कृष्णचैतन्यनाम्ना ये कीर्तयन्ति सकृन्नराः।
नानापराधमुक्तास्ते पुनन्ति सकलं जगत्॥
करिष्यति कलेः सन्ध्यायां भगवान् भूतभावनः।
द्विजातीनां कुले जन्म शान्तानां पुरुषोत्तमः॥१००॥

(विष्णुयामले)

जो जन एकबार भी प्रेमसे "श्रीकृष्णचैतन्य" नाम ग्रहण पूर्वक संकीर्तन करते हैं, वे स्वतः अनेक प्रकारके अपराधोंसे मुक्त होकर जगत्को भी पवित्र कर देते हैं। कलिकालकी सन्ध्यामें समस्त प्राणियोंके मंगलकारी भगवान् पुरुषोत्तम (श्रीकृष्ण) परम शान्त ब्राह्मण कुलमें जन्म ग्रहण करेंगे।

अन्यावताराः बहवः सर्वे साधारणाः मताः।
कलौ कृष्णावतारस्तु गूढः सन्यासवेषधृक्॥१०१॥

(जैमिनी भारते)

प्रभुके अन्य बहुतसे अवतार तो प्रायः साधारणतः (सब शास्त्रोंमें स्पष्ट रूपसे) माने गये हैं, परन्तु कलियुगमें श्रीकृष्णावतार तो संन्यासवेष धारण करनेवाला गुप्तरूपसे माना गया है।

कृष्णचैतन्येति नाम मुख्यात्मुख्तमं प्रभोः।
हेलया सकृदुच्चार्य सर्वनामफलं लभेत्॥१०२॥

(ब्रह्मरहस्ये)

प्रभुका “श्रीकृष्णचैतन्य” यह नाम मुख्यतम माना गया है। कोई अनायास ही लीलाखेलापूर्वक एक बार भी इस नामका उच्चारण कर लेनेसे सभी नामोंके उच्चारणका फल प्राप्त कर लेता है। तात्पर्य—सब अवतारोंकी अपेक्षा कुछ तारतम्य विशेषसे जैसे “एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्” इस उक्तिके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णको सभी अवतारोंका मूल अवतारी स्वयं-भगवान् माना जाता है, उसी प्रकार “राम रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनामभिस्तुल्यं रामनाम वरानने॥ सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम्। एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति॥” इस शास्त्रोक्तिके अनुसार कृष्णनाम भी अन्य भगवन्नामोंकी अपेक्षा तारतम्य भेदसे किंचिद् वैशिष्ट्य धारण किये रहता है। अतः श्रीकृष्णचन्द्र ही श्रीकृष्णचैतन्यके रूपमें आविर्भूत होनेसे ‘श्रीकृष्णचैतन्य’ नामकी भी अन्यापेक्षा विशेषता वर्णित हुई।

कलेः प्रथमसंध्यायां गौरांगोऽसौ महीतले।
भागीरथीतटे रम्ये भविष्यति सनातनः॥१०३॥

(योग—वाशिष्ठे)

कलिकी प्रथम संध्यामें ये ही श्रीहरि भागीरथीके परम रमणीय तटपर भूतलमें गौरांग रूपसे अवतीर्ण होंगे। “सनातन अस्यास्तीति विग्रहः” के अनुसार “अर्शाद्यच्” करके अच् प्रत्ययान्त होनेसे श्रीसनातन गोस्वामीके अवतारकी भी सूचना होती है।

अप्यगण्यमहापुण्यमनन्यशरणं हरेः ।
अनुपासितचैतन्यमधन्यं मन्यते मतिः ॥१०४॥
(चैतन्यचन्द्रामृते)

जो जन अगणित महापुण्यशाली है एवं श्रीहरिके अनन्य शरणागत भी है, परन्तु यदि उसने श्रीचैतन्यदेवकी उपासना नहीं की, अथवा उनके द्वारा सिद्धान्तित प्रेमलक्षणा भक्तिके प्रकारका अनुशीलन नहीं किया तो मेरी मति तो अभी उसे अधन्य ही मानती है। यह श्री प्रबोधानन्द सरस्वतीपादकी निष्ठाकी पराकाष्टा है।

सुवर्णवर्णो हेमांगो वरांगश्चन्दनांगदी।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम् ॥१०५॥
(महाभारतीय अनुशासनपर्व दानधर्म पर्वे,
१४८ अ० विष्णुसहस्रनामस्तोत्रे)

स्वर्नदीतीर भूयौ च नवद्वीपे जनालये।
तत्र द्विजस्वरूपेण जनिष्यामि द्विजालये ॥१०६॥
(देवीपुराण)

भगवानने कहा—स्वर्नदी गंगाके तीर–भूमिमें नवद्वीप नामक स्थानमें ब्राह्मण रूपसे ब्राह्मण गृहमें प्रकट होऊँगा।

शृणु यार्वाङ्गि सुभगे यत्संपृष्टं गोपितं वचः।
एक एव हि गौराङ्गः कलौ पूर्णफलप्रदः॥
यौ वै कृष्णः स गौराङ्गस्तमोर्भेदो न विद्यते।
शिक्षार्थं साधकानां च स्वयं साधकरूपधृक्।

शिक्षागुरुः शचीपुत्रः पूर्णब्रह्म न संशयः ॥१०७॥
(ईशान–संहितायां हर–पार्वती संवादे)

श्रीशिवजीने पार्वतीसे कहा—हे सुन्दर अङ्गोंवाली! हे शुभलक्षणे! तुमने जो गोपनीय बात पूछी, वह सुनो। एकमात्र श्रीगौरांग महाप्रभुका भजन ही कलिकालमें पूर्ण फल देनेवाला है। जो कृष्ण हैं, वे ही गौरांग हैं। इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। साधकोंको भजन शिक्षा देनेके लिए स्वयं पूर्णब्रह्म शचीपुत्र साधकरूप धारणकर शिक्षागुरु रूपसे प्रकट होंगे, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

वैवस्वतान्तरे ब्रह्मन् गंगातीरे सुपुण्यदे।
हरिनाम तदा दत्वा चण्डालान् हड्डिकांस्तथा॥
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शतशोऽथ सहस्रशः।
उद्धरिष्याम्यहं तत्र तप्तस्वर्णकलेवरः।
संन्यासश्च करिष्यामि काञ्चनग्राममास्थितः॥१०८॥
(ऊर्द्ध्वाम्नाय–संहितायां श्रीभगवद्वाक्यम्)

स्वयं भगवान् कृष्णने कहा—हे ब्रह्मन्! वैवस्वत–मन्वन्तरमें मैं सुपवित्र गंगातीरमें तपे हुए सोना जैसे वर्ण एवं विग्रह धारणकर हरिनाम प्रदानकर शत–सहस्र (असंख्य) ब्राह्मण क्षत्रिय–वैश्य–चाण्डाल और नीच जातिके व्यक्तियोंका उद्धार करूँगा और काञ्चनग्राम जाकर संन्यास धर्म ग्रहण करूँगा।

यः आदिदेवोऽखिल लोकनाथो
यस्मादिदं सर्वमभूत् परात्मा।

लयं पुनर्यास्यति यत्र चान्ते तं।
कृष्णचैतन्यमवेहि कान्ते ॥१०९॥
(अनन्त संहिता, दूसरा अंश, दूसरा अध्याय)

हे दुर्गे! जो आदिदेव हैं, अखिल लोकोंके स्वामी हैं, परमात्मा हैं, और जिनसे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न है, और जिनमें सब कुछ लय हो जाता है, वे परम पुरुष ही श्रीकृष्णचैतन्य हैं।

स्वर्णगौरः सुदीर्घाङ्गस्त्रिस्त्रोत तीरसंभवः।
दयालुः कीर्त्तनग्राही भविष्यामि कलौ युगे ॥११०॥
(सौर पुराण)

भगवान कहते हैं—मैं कलियुगमें आजानुलम्बित भुजाओंवाले गौरांग रूपमें गंगाके तट पर अविर्भूत होकर कृपापूर्वक सबसे हरिनाम संकीर्तन कराऊँगा।

क्षराक्षराभ्यां परमः यः एव पुरुषोत्तमः।
चैतन्याख्य परं तत्त्वं सर्वकारणकारणम् ॥१११॥
(अथर्ववेदीय चैतन्य उपनिषदे)

जो क्षर (जात) एवं अक्षर (जीव) इन दोनोंसे भी श्रेष्ठ हैं, वे पुरुषोत्तम कहलाते हैं। उन समस्त कारणोंके भी मूल कारण परतत्त्वका नाम ही श्रीचैतन्यदेव है।

कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामाः।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढं गाढं लीयतां चित्तभृंगः ॥११२॥
(चैतन्यचरितामृते २।६।२५५) (चैतन्यचन्द्रोदये ६।४५)

कालके प्रभावसे अपने भक्तियोगको विनष्टप्राय देखकर

जो “कृष्णचैतन्य” नामक पुरुष पुनः उसका प्रचार करनेके लिए आविर्भूत हुए हैं, उनके श्रीचरणकमलोंमें मेरा चित्तरूपी भ्रमर निमज्जित होवे।

राधाकृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनीशक्तिरस्मा–
देकात्मनावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम्॥११३॥
(चैतन्यचरितामृते १।१।५)

राधाकृष्णकी प्रणय-विकृतिरूप ह्लादिनी-शक्ति द्वारा राधा-कृष्ण स्वरूपतः एकात्म होकर भी विलास-तत्त्वकी नित्यता हेतु राधा-कृष्ण नित्यकाल दोनों ही स्वरूपोंमें विराजमान हैं, वे ही दोनों तत्त्व इस समय एक स्वरूपमें चैतन्य-तत्त्वके रूपमें प्रकटित हैं। अतएव राधा भाव और कान्ति द्वारा सुवलित उन कृष्णरूप गौरसुन्दरको प्रणाम करता हूँ।

अपारं कस्यापि प्रणयिजनवृन्दस्य कुतुकी
रसोस्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः।
रुचिं स्वामावव्रेद्युतिमिह तदीयां प्रकटयन्
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु॥११४॥
(स्तवमालायाम्)

जो कौतुकी कृष्ण प्रणयिजनोंके रससमूहका आस्वादन करते हुए किसी एक असीम मधुर रसका उपभोग करनेकी अभिलाषासे अपनी अंगकान्तिको छिपाकर श्रीराधाकी

अंगकान्तिको ग्रहण कर चैतन्यरूपमें प्रकट हुए हैं, वे हमें विशेषरूपसे कृपा करें।

स्वदयितनिज भावं यो विभाव्य स्वभावात्
सुमधुरमतीर्णो भक्तरूपेण लोभात्।
जयति कनकधामा कृष्णचैतन्यनामा
हरिरिह यतिवेशः श्रीशचीसूनुरेषः ॥११५॥
(बृहद्भागवतामृते १।१।३)

स्वयं भगवान श्रीकृष्णने यह विवेचन करके निश्चय किया है कि भक्तोंके प्रति मेरा जो प्रेम है, उसकी अपेक्षा भक्तोंका मेरे प्रति जो प्रेम है, वह विशेष माधुर्ययुक्त है। इसलिए उस भक्त-प्रेमके आस्वादन करनेके लोभसे उन्होंने भक्तरूपसे संन्यासी वेषमें कनककान्तिके समान दिव्य मंगल-विग्रह धारण किया है, जिनका नाम श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु है। उन शचीनन्दन गौर-हरिकी सदा जय हो।

अन्तः कृष्णं बहिर्गौरं दर्शितांगादिवैभवम्।
कलौ संकीर्त्तनाद्यैः स्मः कृष्णचैतन्यमाश्रिताः ॥११६॥
(भागवत-सन्दर्भे)

अङ्ग-उपाङ्ग आदि वैभवोंके साथ प्रकटित, भीतरमें साक्षात् कृष्ण, बाहरमें गौर-स्वरूप कृष्णचैतन्यको कलियुगमें संकीर्तन आदि यज्ञोंके द्वारा आश्रय करता हूँ।

अन्तः कृष्णो बहिर्गौरः सांगोपांगास्त्रपार्षदः।
शचीगर्भे समाप्नुयां मायामानुषकर्मकृत् ॥११७॥
(स्कन्दपुराणे)

राधांगशश्व्दुपगूहनतस्तदाप्त
धर्मद्वयेन तनुचित्तधृतेन देवः।
गौरो दयानिधिरभूदयि नन्दसूनो
तन्मे मनोरथलतां सफलीकुरुत्वम्॥११८॥
(श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, संकल्पकल्पद्रुमे, ९५)

हे देव नन्दनन्दन! आप निरन्तर श्रीमती राधिकाके श्रीअंगके आलिङ्गनके वशीभूत होकर उनके तनु और चित्त—इन दोनों धर्मोंको अंगीकार करके श्रीगौर दयानिधि हो रहे हैं। तात्पर्य यह कि श्रीराधिकाके तनुधर्म—गौरवर्णको धारणकर 'गौर' तथा चित्तधर्म—दयाको धारण कर दयानिधि अर्थात् दोनोंको धारण कर गौर दयानिधि हुए हैं। अतः मेरी मनोरथ लताको सफल कीजिए।

पितामाता गुरुगण आगे अवतरि।
राधिकार भावकान्ति अंगीकार करि॥
नवद्वीपे शचीगर्भ–शुद्धदुग्धसिन्धु।
ताहाते प्रकट हैला कृष्ण पूर्ण इन्दु॥११९॥
(चैतन्यचरितामृते १।४।२७१–२७२)

माता–पिता एवं अन्यान्य गुरुजनोंको पहले ही अवतरित करा कर पीछे स्वयं श्रीमती राधिकाके भाव और कान्तिको अंगीकार करके कृष्णरूपी पूर्णचन्द्र श्रीधाम नवद्वीपके श्रीशचीमाताके गर्भरूपी शुद्ध दुग्धके समुद्रसे प्रकट हुए।

राधिकार भावकान्ति अंगीकार बिने।
सेइ तिन सुख कभु नहे आस्वादने॥
राधाभाव अंगीकरि धरि तार वर्ण।
तिन सुख आस्वादिते हब अवतीर्ण॥१२०॥
(चैतन्यचरितामृते १।४।२६७–२६८)

श्रीकृष्ण मन–ही–मन विचार कर रहे हैं कि श्रीमती राधिकाके भाव एवं कान्तिको अंगीकार किये बिना उक्त तीनों सुखोंका आस्वादन संभव नहीं है। अतएव श्रीराधाके भावको अंगीकार करके तथा श्रीमती राधिकाकी अंगकान्तिको धारण करके उक्त तीनों सुखोंका आस्वादन करनेके लिए अवतीर्ण होऊँगा।

युगधर्म प्रवर्त्तामु नामसंकीर्तन।
चारि भाव–भक्ति दिया नाचामु भुवन॥
युगधर्म–प्रवर्तन हय अंश हैते।
आमा बिने अन्ये नारे व्रजप्रेम दिते॥
ताहाते आपन भक्तगण करि संगे।
पृथिवीते अवतरि करिमु नाना रंगे॥
एत भावि कलिकाले प्रथम सन्ध्याय।
अवतीर्ण हैला कृष्ण आपनि नदीयाय॥१२१॥
(श्रीचैतन्यचरितामृते १।३।१९,२६,२८,२९)

युगधर्म हरिनाम—संकीर्तनका प्रवर्तन करूँगा तथा दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन चार प्रकारकी भाव भक्तिका दानकर भुवनको नचाऊँगा। युग–धर्मका

प्रर्वतन तो मेरे अंशावतारों द्वारा भी हो जाता है, परन्तु मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी अवतार व्रजप्रेमका दान नहीं कर सकता। अतएव व्रज-प्रेमका दान करनेके लिए अपने भक्तवृन्दके सहित पृथ्वीपर अवतरित होकर विविध प्रकारकी चमत्कार-लीलाएँ करूँगा। ऐसा सोचकर स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर कलियुगकी प्रथम सन्ध्यामें श्रीनवद्वीप धाममें स्वयं अवतीर्ण हुए।

दैर्घ्य विस्तारे जेइ आपनार हात।
चारि हस्त हय 'महापुरुष' विख्यात॥
'न्यग्रोधपरिमण्डल' हय ताँर नाम।
न्यग्रोधपरिमण्डल-तनु चैतन्य गुणधाम॥१२२॥
(श्रीचैतन्यचरितामृते १।३।४२,४३)

जो व्यक्ति अपने हाथसे चार हाथ लम्बा होता है, वह प्रसिद्ध महापुरुष होता है। इस लक्षणको 'न्यग्रोध-परिमण्डल' कहते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु भी अपने हाथसे चार हाथ लम्बे-न्यग्रोधपरिमण्डल-लक्षणसे युक्त थे।

एइ कृष्ण-महाप्रेमेर सात्विक विकार।
'सुद्‌दीप्त सात्विक' एइ नाम जे 'प्रणय'॥
नित्यसिद्ध भक्ते से 'सुद्‌दीप्त भाव' हय।
'अधिरूढ़ महाभाव' जाँर, ताँर ए विकार।
मनुष्येर देहे देखि—बड़ चमत्कार॥१२३॥
(श्रीचैतन्यचरितामृते २।६।११-१३)

पुरीमें श्रीजगन्नाथजीके दर्शनोंसे प्रेमसे मूर्च्छित श्रीचैतन्य-

महाप्रभुके अंगोंमें महाप्रेमके दुर्लभ सात्त्विक विकारोंको लक्ष्यकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यजी आश्चर्यचकित होकर विचारने लगे—अहो! इस व्यक्तिके अङ्गोंमें कृष्ण-प्रेमकी सर्वोच्च दशामें प्रकट होनेवाले अत्यन्त चमत्कारपूर्ण सात्विक विकार-समूह परिलक्षित हो रहे हैं। ये विकार-समूह तो नित्यसिद्ध भक्तोंके लिए भी दुर्लभ हैं, क्योंकि नित्यसिद्ध भक्तोंमें अधिक-से-अधिक प्रणय-नामक अवस्थामें सुद्दीप्त सात्त्विक भाव तक ही उदित होते हैं। परन्तु इस मनुष्यके अङ्गोंमें वे सब अत्यन्त दुर्लभ सात्त्विक विकार-समूह प्रकट हो रहे हैं जो किसी अधिरूढ़ महाभाववालेमें ही संभव है और अधिरूढ़ महाभाव तो एकमात्र ब्रज गोपरमणियोंमें ही उदित होते हैं। अतएव वैसे अति दुर्लभ अधिरूढ़ महाभावावस्थाके विकार-समूह इस मनुष्यके अंगोंमें दीख रहे हैं। तब यह मनुष्य कौन है?

श्रीचैतन्यचरितामृते—

नन्दसुत बलि जाँरे भागवते गाइ।
सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्यगोसांइ॥१२४॥

(आदि २।९)

चैतन्यगोसांइर एइ तत्व निरूपण।
स्वयं भगवान कृष्ण व्रजेन्द्रनन्दन॥१२५॥

(आ॰ २।१२५)

श्रीचैतन्य सेइ कृष्ण नित्यानन्द राम।
नित्यानन्द पूर्ण करे चैतन्येर काम॥१२६॥

(आ॰ ५।१५६)

सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य ईश्वर।
अतएव आर सब ताँहार किंकर॥१२७॥
(आ॰ ६।८२)

पहिले देखिलुँ तोमार संन्यासी स्वरूप।
एबे तोमा देखि मुञि श्याम–गोपरूप॥
तोमार सम्मुखे देखि कांचन पंचालिका।
तांर गौरकान्त्ये तोमार सर्व अङ्ग ढाका॥
ताहाते–प्रकट देखि स–बंशी वदन।
नाना भावे चंचल ताहे कमलनयन॥
तबे हांसि, तांरे प्रभु देखाइल स्वरूप।
'रसराज' 'महाभाव'—दुइ एक रूप॥१२८॥
(मध्य ८।२६७–२६९, २८१)

जय नवद्वीपनवप्रदीप प्रभाव पाषण्डगजैकसिंह।
स्वनामसंख्याजपसूत्रधारि चैतन्यचन्द्र भगवन्मुरारि॥१२९॥
(श्रीचैतन्यभागवत म॰ ५।१)

जो नवद्वीपके नवीन प्रदीप स्वरूप हैं, जो पाषण्डरूप हस्तिगणको दमन करनेमें अद्वितीय सिंहके समान हैं और जिन्होंने 'हरे कृष्ण' इत्यादि अपने नामोंकी जपसंख्या ठीक–ठीक रखनेके लिए संख्यानिर्णायक गाँठोंवाले सूत्र (धागा) को (हाथोंमें) धारण कर रखा है, उन श्रीचैतन्यचन्द्र नामवाले भगवान श्रीकृष्णचन्द्रकी जय हो॥१२९॥

नवद्वीप वृन्दावन दुइ एक हय।
गौर श्याम रूपे प्रभु सदा विलसय॥१३०॥
—श्रीनरहरिदास (द्वैतविलासमें)

श्रीनवद्वीप और श्रीवृन्दावन—ये दोनों अभिन्न हैं। श्रीकृष्ण ही गौर रूपसे श्रीनवद्वीपधाममें और गौरसुन्दर ही कृष्ण रूपसे श्रीवृन्दावनधाममें विलास करते हैं।

अब तो 'हरिनाम' लौ लागी।
सब जगको यह माखनचोरा, नाम धर्‌यो वैरागी॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ी सब गोपी।
मूंड़ मुड़ाई डोरि कटि बांधि, माथे मोहन टोपी॥
मात जसोमति माखन कारण, बाँधे जाके पाँव।
श्याम किशोर भयो नव गौरा, चैतन्य जाको नांव॥
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै।
गौर कृष्ण की दासी 'मीरा' रसना कृष्ण बसै॥१३१॥

—मीराबाई

भाव राधिका माधुरी, आस्वादन सुख काज।
जयति कृष्णचैतन्य जय कलि प्रकटे व्रजराज॥१३२॥

—कस्यचित्

श्रीनित्यानन्द कृष्ण–चैतन्य की भक्ति दशों दिशि विस्तरी।
गौड़ देश पाखण्ड मेटि कियो भजन परायन।
करुणासिन्ध कृतज्ञ भये अगतिन गति दायन॥१३३॥
दशधा रस आक्रान्त महत जन चरण उपासे।
नाम लेतनिहि पाप दुरित तिहि नरके नाशे॥१३४॥
अवतार विदित पूरब मही उभै महत् देही धरी।
श्रीनित्यानन्द कृष्णचैतन्यकी भक्ति दशों दिशि विस्तरी॥१३५॥

—नाभाजी कृत भक्तमालमें

अनुवादकर्त्ता भी करुणावरुणालय स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्ग

महाप्रभुके श्रीपदारविन्दमें उनकी कृपाकटाक्षकी प्राप्तिके लिए प्रार्थना करते हैं—

हा गौराङ्ग! दयानिधे! गुणनिधे! हा प्रेमसम्पन्निधे!
हा सौन्दर्यनिधे! क्षमाजलनिधे! वात्सल्यवरांनिधे!
हे गाम्भीर्यनिधे! सुधैर्यजलधे! हे भक्तवाच्छानिधे!
दीनोद्धारपारावार! भगवन् ! दीने मयि प्रीयताम्॥१३६॥

—महाकवि श्रीवनमालीदास शास्त्री

उपसंहार

अंतमें हम श्रीमन्महाप्रभुके समयामयिक विद्वद्वरेण्य श्रीगौरपार्षद श्रीनरहरि सरकार ठाकुरके निम्नलिखित पद्यको उद्धृत कर ग्रन्थको समाप्त करते हैं—

कृष्णो देवः कलियुगभवं लोकमालोक्य सर्वं
पापासक्तं समजानि कृपासिन्धु–चैतन्यमूर्तिः।
तस्मिन् येषां न भवति सदा कृष्णबुद्धिर्नराणां
धिक् तान् धिक् तान् धिगिति धिगितिव्याहरेत्
किं मृदङ्गः॥१३७॥

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण कलियुगके जीवोंको पापोंमें अत्यधिक आसक्त देखकर उनके उद्धारके लिए स्वयं श्रीराधिकाजीके भाव और अङ्गकान्तिको अंगीकार करके करुणासागर श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें आविर्भूत हुए हैं। जो दुर्भागे लोग श्रीचैतन्य महाप्रभुको साक्षात् श्रीकृष्ण नहीं मानते, उनको धिक्कार देते हुए ही मृदंग मानो 'धिक् तान' 'धिक तान्' 'धिगिति' 'धिगिति' की घोषणा करता है।

❁ **समाप्त** ❁